विधि आयोग

भारत सरकार

छियासीवीं रिपोर्ट

विभाजन अधिनियम, 1893

अगस्त, 1980

अ० शा० स०पत्र क्र०एफ2(5)/60 वि०आ०

न्यायाधीश

पु० वि० दीक्षित

अध्यक्ष
विधि आयोग, भारत सरकार
नई दिल्ली-110 001

27 अगस्त, 1980

प्रिय मंत्री जी,

मैं इस पत्र के साथ विधि आयोग की छियासवीं रिपोर्ट, प्रेषित कर रहा हूं जो विभाजन अधिनियम, 1893 के संबंध में है।

विभाजन अधिनियम यह उपबंध करने हेतु 1893 में अधिनियमित किया गया था कि जब सम्पत्ति का विभाजन युक्तियुक्त रूप से या सुविधाजनक रूप से नहीं किया जा सकता हो और सभी हिस्साधारकों के लिये यह अधिक फायदाप्रद हो कि सम्पत्ति का विक्रय करके आगमों का वितरण कर दिया जाय तो न्यायालय उस सम्पत्ति के विक्रय और आगमों के वितरण का निदेश दे सकेगा। यह अधिनियम तकनीकी स्वरूप का है। यह लगभग 87 वर्षों से प्रवर्तन में है और यह समय है कि उसके कार्यकरण के दोषों और खामियों को दूर किया जाय।

इस अधिनियम के कार्यकरण के अनुभव के आलोक में और अधिनियम के प्राय: सभी उपबन्धों पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के परस्पर विरोधी अनेक विनिश्चयों को दृष्टि में रखकर, आयोग ने इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रयोजनों के लिये संशोधनों का सुझाव दिया है---

(क) अधिनियम के कार्यान्वयन में महसूस की गयी व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये;

(ख) प्रारूपण संबंधी दोषों एवं दुर्बोधताओं को, जिनसे अधिनियम के निर्वचन में कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं; दूर करने के लिये;

(ग) यह सुनिश्चित करने के लिये कि अधिनियम के प्रयोजनों की सिद्धि भलीभांति हो सके; और

(घ) विद्यमान उपबन्धों की कमियों को दूर करने के लिए।

इस अधिनियम की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि और उसके उपबन्धों को ध्यान में रखकर, उन संशोधनों का, जो आयोग द्वारा प्रस्तावित किए गए हैं, भलीभांति मूल्यांकन किया जा सकता है। इस पत्र में पृष्ठभूमि या अधिनियमों के उपबन्धों का संक्षेप देने से उन प्रस्तावों का, जो आयोग द्वारा किए गए हैं, मूल्यांकन करने में कोई विशेष सहायता नहीं मिल सकती।

आयोग, श्री पी० एम० बक्शी, सदस्य-सचिव को यह रिपोर्ट तैयार करने के लिए साधुवाद देता है। श्री वी० वी० वजे, अपर सचिव द्वारा दी गयी सहायता के लिए हम उनके आभारी हैं।

सद्भावनाओं सहित,

भवदीय
(हस्ता०)
पु० वि० दीक्षित

श्री पी० शिवशंकर,
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
नई दिल्ली-110 001

1—371 एल० ए० डी०/एन्० डी०/81

विषय सूची

	पृष्ठ
अध्याय 1. प्रस्तावना	1
अध्याय 2. इतिहास	3
अध्याय 3. अधिनियम की स्कीम और तत्सदृश उपबन्ध	8
अध्याय 4. अंग्रेजी विधि	12
अध्याय 5. विक्रय की शक्ति--धारा 1-2	13
अध्याय 6. हिस्साधारकों को विक्रय--धारा 3	20
अध्याय 7. निवास गृह का हिस्सा--धारा 4	24
अध्याय 8. विविध : धारा 5 से 10	36
अध्याय 9. सिफारिशों का संक्षेप	40
परिशिष्ट	
परिशिष्ट 1. पार्टीशन ऐक्ट, 1868	42
परिशिष्ट 2. पार्टीशन ऐक्ट, 1876	44
परिशिष्ट 3. वर्तमान अंग्रेजी विधि और उसका उद्भव	46

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1. यह रिपोर्ट विभाजन अधिनियम, 1893 से संबंधित है। यह अधिनियम यद्यपि अत्यधिक तकनीकी प्रकृति का प्रतीत होता है, तथापि उसमें वस्तुतः[1] सम्पत्ति के विभाजन से संबंधित महत्वपूर्ण बातों का विवेचन किया गया है और वह विधि के आधारभूत कृत्य से संबंधित है। रिपोर्ट की व्याप्ति।

1.2. विधि का अस्तित्व प्रथमतः इसलिये होता है कि समाज में (या उन समूहों में जिनसे समाज का गठन होता है) ऐसे विवादों का, जो न्याय विषयों से संबंधित विवाद हों, समाधान शांतिपूर्ण रीति से हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति वह दोहरी रीति से करती है, अर्थात्—उन सिद्धान्तों के बारे में नियम अधिकथित करके जिनका अनुपालन समाज के सदस्यों द्वारा एक दूसरे के साथ अपने व्यवहार में किया जाना चाहिये, और इस प्रकार अधिकथित किये गये सिद्धान्तों को प्रवर्तित करने के लिये तन्त्र की स्थापना करके। पश्चात्कथित कृत्य पारम्परिक रूप से प्रक्रिया-विधि के क्षेत्र से संबंधित माना जाता है। विभाजन अधिनियम, जो प्रथमतः साम्पत्तिक अधिकारों के संबंध में कतिपय उपचार सूजित करने से संबंधित है, मुख्यतः प्रक्रिया-विधि से संबद्ध है। विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के संबंध में विधि का कृत्य।

1.3 यह अधिनियम यद्यपि प्रक्रिया-विधि के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है, तथापि इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह केवल तकनीकी बारीकियों से संबंधित है। अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों के अधीन उद्भूत होने वाले विवाद्यकों के अवधारण के अनुक्रम में वितरक-न्याय से संबंधित कठिन प्रश्न विचारण के लिये उपस्थित होते हैं। प्रकटतः किसी सरल उपबन्ध में—जैसा धारा 4 में अन्तर्विष्ट है और जो अन्य बातों के साथ, न्यायालय को कतिपय स्थितियों में हिस्से का मूल्यांकन करने के लिये सशक्त करता है—विभिन्न कारकों का संतुलन अन्तर्ग्रस्त हो सकता है जो पूरी तरह विधिक स्वरूप के न होकर कतिपय आर्थिक तथ्यों, पक्षकारों के आचरण और अनेक अन्य विषयों से संबद्ध होते हैं। यह अधिनियम प्रक्रिया-विधि का भाग केवल इस अर्थ में है कि वह प्रथमतः मुकदमे के प्रक्रम पर प्रवर्तित होता है और उसके उपबन्ध मुख्यतः मुकदमे की प्रक्रिया से संबंधित हैं। किन्तु उसका महत्व मुकदमे की केवलमात्र बारीकियों तक सीमित न होकर बहुत व्यापक है। अधिनियम केवल तकनीकी बारीकियों से संबंधित नहीं है।

1.4. यदि कोई प्रक्रियात्मक पहलू पर ही ध्यान केन्द्रित करता है, तो भी समाज की कतिपय आशायें पूरी होनी चाहिये। प्रक्रिया-विधि में समाविष्ट तन्त्र प्रवर्तन की दृष्टि से सुचारू होना चाहिये और उससे संबंधित विधि जहां तक हो सके उन संदिग्धार्थों से मुक्त होनी चाहिये जिनसे उसके सुचारू प्रवर्तन में बाधा उपस्थित होती हो। दुर्भाग्यवश, विभाजन अधिनियम में जिस तन्त्र की व्यवस्था की गई है, उसका कार्यकरण समाधानप्रद नहीं रहा है। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि जिस रीति में इस अधिनियम के अनेक उपबन्ध मूलतः बनाए गए थे और उन उपबन्धों का जो परस्पर विरोधी निर्वचन न्यायालयों में किया गया है उसके परिणामस्वरूप भ्रांति और कठिनाई उत्पन्न हुई है। दोषपूर्ण तंत्र।

1.5. भारतीय कानून पुस्तक में शायद ही कोई ऐसा अन्य अधिनियम हो जिसके बारे में विनिश्चयों में इतना अन्तर्विरोध उत्पन्न हुआ हो जितना विभाजन अधिनियम के बारे में उत्पन्न हुआ है। अधिनियम के प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण उपबन्ध के बारे में परस्परविरोधी न्यायिक विनिश्चय हुए हैं। कुछ बिन्दुओं पर (उदाहरणार्थ, धारा 4 के बारे में) इतना व्यापक विरोध है कि कोई सामान्य आधार खोजा ही नहीं जा सकता।[2] अतः यदि विधि के पुनरीक्षण और उनके सुधार का एक उद्देश्य विधि की एकरूपता है, तो विभाजन अधिनियम निश्चित ही ऐसी अधिनियमिति है जो पुनरीक्षणार्थ हाथ में ली जाने के लिए पूर्णतः उपयुक्त है। विनिश्चयों में विरोध।

---

1. नीचे का पैरा 1.3।
2. नीचे का अध्याय 7।

सम्पत्ति विधि और विभाजन विधि ।

1.6. इसके अतिरिक्त, विधि आयोग, सम्पत्ति की मुख्य विधि से संबद्ध अनेक विषयों पर अपनी रिपोर्ट पहले ही भेज चुका है,[1] और यह समुचित है कि अब उस विधि के प्रक्रियात्मक प्रतिभाग को विचारार्थ किया जाय ।

पुनरीक्षण की आवश्यकता।

1.7. अधिनियम के पुनरीक्षण की आवश्यकता महसूस की जाने पर, आयोग में उसके उपबन्धों का अध्ययन कुछ समय पूर्व प्रारंभ किया गया था । इसी बीच, आयोग को गुजरात उच्च न्यायालय से उसके हाल ही के निर्णय की प्रति भी प्राप्त हुई[2] जिसमें इस अधिनियम की धारा 4 के परस्पर विरोधी निर्वचनों के कारण उत्पन्न भ्रांति पर प्रकाश डाला गया था । विभिन्न न्यायालयों के हाल ही के अनेक निर्णयों के कारण इस अधिनियम को पुनरीक्षित किए जाने की आवश्यकता और भी बढ़ गई है ।

यहां इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि कुछ समय पूर्व, विधि मन्त्रालय (विधायी विभाग) को बार के एक सदस्य की ओर से भी एक सुझाव प्राप्त हुआ था[3] जिसमें इस अधिनियम के (विशेषतः उसकी धारा 2 और 3) के कार्यकरण में अनुभव की जाने वाली कठिनाइयों का उल्लेख करते हुये यह अनुरोध किया गया था कि इस विधि में सुधार किया जाय । इस पर विधायी विभाग ने यह सुझाव दिया था कि विधि आयोग इस अधिनियम के पुनरीक्षण के प्रश्न पर विचार कर सकता है । यह सुझाव इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुये दिया गया था कि उस समय आयोग के समक्ष सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 के पुनरीक्षण का कार्य प्रारंभ करने का प्रस्ताव विचाराधीन था । जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है,[4] उसके पश्चात् आयोग सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम पर अपनी रिपोर्ट पहले ही भेज चुका है ।[5]

रिपोर्ट की स्कीम ।

1.8. अतः यह प्रस्तावित है कि इस अधिनियम पर, संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचन के पश्चात्, धारावार विचार किया जाय । कुछ हद तक यह अधिनियम अंग्रेजी कानूनी विधि पर आधारित है क्योंकि वह विधि अधिनियम उस समय प्रवृत्त थी जब भारतीय अधिनियम अधिनियमित किया गया था ।

अंग्रेजी विधि, जैसी कि वह उस समय विद्यमान थी और जैसी कि वह अब प्रवृत्त है, की प्रमुख विशेषताएं परिशिष्ट में दी गई हैं ।[6]

---

1. उदाहरणार्थ, भारत के विधि आयोग की 70वीं रिपोर्ट (सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882) और 64वीं रिपोर्ट (विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874) तथा 81वीं रिपोर्ट (हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856) ।
2. नीचे का पैरा 7.16 ।
3. एफ० 1(1)64-एल०सी० (ला कमीशन) और एफ 14(4)/62 लेजि० II (लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट) ।
4. ऊपर का पैरा 1.6 ।
5. ला कमीशन आफ इण्डिया, 70वीं रिपोर्ट (सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882) ।
6. परिशिष्ट 3 ।

अध्याय 2

इतिहास

अधिनियम का इतिहास ।

2.1. वे परिस्थितियां दिलचस्प हैं जिनमें विभाजन अधिनियम, 1893 अधिनियमित हुआ था । भारतीय कानूनी विधि में, जैसी कि वह 1892 में थी, ऐसा कोई उपबन्ध नहीं था जो विभाजन वादों में विक्रय और विक्रय आगमों के वितरण का निदेश देने के लिये न्यायालय को सशक्त करता हो । सिविल प्रक्रिया संहिता[1] (जैसी कि वह उस समय प्रवृत्त थी) में राजस्व देने वाली भूमियों और राजस्व न देने वाली भूमियों के विभाजन की प्रक्रिया का क्रमश: विवेचन किया गया था ।[2] किन्तु उक्त संहिता की सुसंगत धाराएं न्यायालय को केवल सम्पत्ति के विभाजन के लिये (और कुछ अपवादात्मक मामलों में, हिस्सों के मूल्य को बराबर करने के लिये धन के रूप में प्रतिकर अधिनिर्णीत करने के लिये) प्राधिकृत करती थीं । न्यायालय विभाजन के पश्चात् बची हुई सम्पत्ति के विक्रय का निदेश नहीं दे सकता था । वह प्रत्येक पक्षकार को हिस्सा देने के लिये आबद्ध था ।

उद्देश्यों एवं कारणों का विवरण ।

2.2. इस कमी के कारण जो कठिनाई उत्पन्न हुई उसका विवरण उस विधेयक के, जिसके परिणाम-स्वरूप 1893 का अधिनियम बना, उद्देश्यों एवं कारणों के विवरण[3] में इस प्रकार दिया गया था :—

"तथापि, ऐसे दृष्टान्त बहुधा उपस्थित होते हैं जिनमें समान विभाजन करने में दुर्गम्य व्यावहारिक कठिनाइयां उपस्थित होती हैं, और ऐसे मामलों में न्यायालय अपनी डिक्री को प्रभावशील करने में या तो शक्तिहीन होता है या ऐसा करने के लिये उसे सभी प्रकार के साधनों और युक्तियों का सहारा लेना पड़ता है । ऐसी कठिनाइयां बहुधा उपस्थित होती हैं तथापि अनेक मामलों में जिनमें पक्षकारों को उचित सलाह दी जाती है वे सामान्यत: किसी पारस्परिक ठहराव से सहमत हो जाते हैं, और इस प्रकार न्यायालय को उलझन से बचा लेते हैं ।

वर्तमान विधेयक में यह प्रस्तावित है कि समुचित रक्षोपायों के अधीन न्यायालय को यह वैवेकिक प्राधिकार देकर कि न्यायालय उस स्थिति में, जबकि विभाजन युक्तियुक्त रूप से नहीं किया जा सकता हो और न्यायालय की राय में विक्रय पक्षकारों के लिये अधिक फायदाप्रद होगा, विक्रय का निदेश दे सकेगी, विधि की इस कमी को पूरा किया जाय । किन्तु इस देश के लोगों का उनके कब्जाधीन भू-क्षेत्र से जो गहरा लगाव है उसे ध्यान में रखते हुये, यह प्रस्तावित है कि न्यायालय द्वारा इस नई शक्ति के प्रयोग के लिये, सम्पत्ति में कम से कम आधे हिस्से की सीमा तक हितबद्ध पक्षकारों की सम्मति को पुरोभाव्य शर्त बनाया जाय । साथ ही, इस विशेषाधिकार के अन्यायपूर्ण प्रयोग को रोकने की दृष्टि से यह प्रस्तावित है कि ऐसे हिस्साधारकों को, जो विक्रय नहीं चाहते, यह अधिकार दिया जाय कि वे अन्य हिस्साधारकों के हिस्सों का क्रय न्यायालय द्वारा अवधारित किए जाने वाले मूल्य पर कर सकें ।"

"इसके अतिरिक्त, वह शक्ति जो न्यायालय को दी जाने के लिए प्रस्तावित है, वैवेकिक शक्ति होगी और उसका प्रयोग मामले की समस्त परिस्थितियों पर विचार करके किया जायगा । इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि जहां न्यायालय विक्रय का निदेश देने के लिये बाध्य है, वहां विधेयक द्वारा पक्षकारों को अग्रक्रय का वैसा ही अधिकार दिया गया है जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1882 की धारा 310 द्वारा हिस्साधारकों को प्रदत्त किया गया है ।"

---

1. कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 की धारा 265 और 396 ।

2. देखिए नीचे का पैरा 2.11 ।

3. 1892 के विधेयक सं० 3 का उद्देश्यों एवं कारणों का विवरण, गजट आफ इण्डिया, 1892, भाग पांच, पृ० 46 (धारा 2 और 3 से संबंधित भाग) ।

विक्रय की शक्ति प्रदत्त करने वाले उपबन्ध का इतिहास।

2.3. उद्देश्यों और कारणों के विवरण में विधेयक के उस खण्ड के बारे में, जो धारा 4 के समान है आगे यह कहा गया है कि—[1]

"विधेयक में यह भी प्रस्तावित किया गया है कि न्यायालय को यह शक्ति भी दी जाय कि वह किसी परव्यक्ति को, जिसने क्रय द्वारा किसी कौटुम्बिक निवास गृह में कोई हिस्सा अर्जित कर लिया है, उस दशा में जबकि वह विभाजन कराना चाहता है, इस बात के लिये विवश कर सके कि वह अपना हिस्सा कुटुम्ब के उन सदस्यों को, जो गृह के शेष भाग के स्वामी हैं, ऐसे मूल्य पर बेचे जो न्यायालय द्वारा अवधारित किया जाय। यह उपबन्ध उस विशेषाधिकार का विस्तारण मात्र है जो ऐसे हिस्साधारकों को सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 44 के पैरा 2 द्वारा दिया गया है, और मात्र उस सुविदित नियम को लागू करना है जो मुसलमानों में सभी जगह प्रचलित है और हिन्दुओं में देश के कुछ भागों में रूढ़ि द्वारा प्रचलित है।"

"विधेयक की अन्य धाराएं प्रक्रियात्मक मामलों से संबंधित हैं और उन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है।"

प्रारूप—विधेयक।

2.4. यह प्रतीत होता है कि प्रारूप विधेयक, जैसा कि वह मूलतः प्रस्तावित किया गया था, अंग्रेजी ऐक्ट[2] के इस विषय से संबंधित सभी उपबन्धों को समाविष्ट करने के लिये उद्दिष्ट था। उदाहरणार्थ, विधेयक की यथा प्रस्तावित धारा 3 के अधीन विक्रय का आदेश किसी हिस्सेदार की प्रार्थना पर, भले ही सम्पत्ति में उसके हित का परिमाण कुछ भी हो, दिया जा सकता था जैसा कि सन् 1868 के अंग्रेजी ऐक्ट की धारा 3 में उपबन्धित था। उस विधेयक के खण्ड 4 द्वारा यह अपेक्षित किया गया था कि न्यायालय सम्पत्ति के आधे हिस्से में हितबद्ध हिस्सेदार के आवेदन पर सम्पत्ति के विक्रय का निदेश दे और विक्रय आगमों का वितरण करे, और, वह अधिकांशतः 1868 के अंग्रेजी ऐक्ट की धारा 4 के अनुसार था।

विधेयक के संबंध में

2.5. विधेयक राय जानने के लिये परिपत्र, तारीख 31 अक्तूबर, 1889 के साथ स्थानीय शासनों और उच्च न्यायालयों को भेजा गया था। इस प्रकार जो विभिन्न राय प्राप्त हुई, उनमें से अधिकांश में उन उपबन्धों[3] पर आपत्ति की गई थी जिसके अधीन विक्रय के लिये आवेदन करने वाले हिस्साधारकों के हित के परिमाण को विचार में लाए बिना विक्रय का आदेश दिया जा सकता था। उदाहरणार्थ, मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री मुत्तुस्वामी अइयर ने यह सुझाव दिया कि ऐसी पैतृक भूमि के मामले में, जो संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब के जीवन निर्वाह का एकमात्र या मुख्य साधन हो, समस्त सह-हिस्साधारकों या उनमें से अधिकांश सह-हिस्साधारकों की सम्मति के बिना विक्रय का निदेश नहीं दिया जाना चाहिये। सर आर वेस्ट का अनुभव (जो बॉम्बे गवर्नमेंट द्वारा उद्धृत किया गया था) यह था कि (अंग्रेजी) पार्टीशन ऐक्ट भारत के लिये अनुपयुक्त था। बॉम्बे गवर्नमेंट का यह विचार था कि उस विधेयक के कारण प्राचीन संपदाओं में से आधी सम्पदाएं विघटित हो जाएंगी।

बॉम्बे गवर्नमेंट द्वारा की गई समीक्षा।

2.6. बॉम्बे गवर्नमेंट द्वारा चाहे गए परिवर्तनों में एक उपबन्ध यह था कि जहां विभाजन का प्रतिरोध करने वाले सदस्य कुल सम्पदा के एक-तिहाई का प्रतिनिधित्व करते हों, वहां विभाजन की डिक्री उस दशा में नहीं दी जानी चाहिए जब कि विभाजन की मांग करने वाले सदस्यों के हिस्से को सम्पदा पर प्रभार बनाया जा सकता हो। इसके विपरीत, बम्बई के महाधिवक्ता और बॉम्बे हाइकोर्ट के न्यायाधीशद्वय श्री पारसन्स और श्री तेलंग ने विधेयक का सारतः अनुमोदन किया। बम्बई के कार्यकारी विधि परामर्शी श्री बेट्टी ने विधेयक पर तीव्र विरोध प्रकट किया। उनका विचार था कि अंग्रेजी पार्टीशन ऐक्ट के समान कठोर अधिनियमिति को भारत में लागू करने के पूर्व, यह उचित होगा कि प्रायोगिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक स्वरूप का प्रारंभिक विधान निर्मित करने के लिये अग्रसर हुआ जाय। उनका सुझाव था कि इसके पूर्व कि विक्रय का निदेश दिया जाय, यह आवश्यक है कि सम्पत्ति के एक आधे हिस्से में हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा उसके लिये अनुरोध किया जाना चाहिये, और यह कि अन्य हितबद्ध पक्षकारों की विसम्मति अयुक्तियुक्त और तुच्छ होनी चाहिए।[4]

---

1. गजट ऑफ इण्डिया, 1892, भाग 5, पृ० 46।
2. पार्टीशन ऐक्ट, 1868 (परिशिष्ट 1 देखिए)।
3. ऊपर का पैरा 2.4 देखिए।
4. विधेयक के इतिहास से संबंधित विवेचन पार्टीशन ऐक्ट, 1893 (1893 का सं० 4), राष्ट्रीय अभिलेखागार की मुद्रित फाइल, होम (ज्यूडीशियल) डिपार्टमेंट, 1891, विशेषतः पृ० 1-12, कार्य विवरण, तारीख 19 सितम्बर, 1890 पर आधारित है।

कलकत्ता उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण।

2.7. कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी विधेयक के कठोर उपबन्धों का अनुमोदन नहीं किया। उसकी राय में, उन उपबन्धों का दुरुपयोग हो सकता था और उस वर्ग के मामलों की संख्या में वृद्धि हो सकती थी जो पहले से ही बहुत अधिक थी। उसने यह भी सुझाव दिया कि जहां व्यावहारिक रूप से विभाजन नहीं किया जा सकता हो, वहां न्यायालय को यह शक्ति होनी चाहिए कि वह वादी को इस बात के लिए विवश कर सके कि वह स्वयं के हिस्से का क्रय कर लिया जाने दे, और जब किसी सम्पदा में का कोई हिस्सा प्राइवेट विक्रय द्वारा बेचा गया हो या बेचा जाने वाला हो तो अन्य सह-हिस्साधारकों को उस सम्पूर्ण सम्पदा या उसके ऐसे भाग में, जिसे न्यायालय युक्तियुक्त समझे, अग्रक्रय का अधिकार होना चाहिए। यह प्रतीत होता है कि वर्तमान धारा 4 के उपबन्ध की उत्पत्ति कलकत्ता उच्च न्यायालय के सुझाव से ही हुई है।

श्री नॉक्स और ब्रिटिश इण्डिया एसोशियशन का दृष्टिकोण।

2.8. नार्थ वेस्टर्न प्रॉविन्सेज और अवध के विधि परामर्शी श्री नॉक्स का यह विचार था कि यह विधेयक एक ऐसा साधन बन सकता है जिसके द्वारा धनवान हिस्साधारक, जो स्थावर सम्पत्ति में छोटे-मोटे हित का स्वामित्व रखते हैं, किसी पैतृक सम्पत्ति का विक्रय (अपने फायदे के लिए) करवा सकते हैं और संयुक्त सम्पत्ति को विघटित कर सकते हैं।

ब्रिटिश इण्डिया एसोशिएशन की ओर से भी विधेयक का तीव्र विरोध किया गया जिसका यह कथन था कि—

"सामाजिक दशाओं का ध्यान रखे बिना, ब्रिटिश पार्टीशन ऐक्ट, 1868 का अनुकरण करने वाला और सम्पत्ति के विक्रय का समर्थन करने वाला यह विधेयक इस देश की परिस्थितियों के सर्वथा अनुपयुक्त है।"

सर सील द्वारा की गई समीक्षा।

2.9. तथापि, हमारे दृष्टिकोण से सबसे अधिक दिलचस्प समीक्षा श्री ब्रोजेन्द्र कुमार सील,[1] जिला न्यायाधीश, बेंकूरा की थी, जिन्होंने निम्नलिखित नियमों का सुझाव दिया था :—

"1. जब सम्पत्ति का विभाजन सुविधाजनक रूप से उतने भागों में किया जा सकता हो जितने कि हिस्से हैं, तब उसका विभाजन इस प्रकार किया जाना चाहिए।"

"2. जब उसका विभाजन इस प्रकार नहीं किया जा सकता हो, किन्तु जब सम्पत्ति का एक भाग प्रत्येक हिस्साधारक को आबंटित किया जा सकता हो, तो हिस्सों को बराबर करने के लिए न्यायालय को यह शक्ति होनी चाहिए कि वह एक हिस्साधारक को यह निदेश दे सके कि वह दूसरे हिस्साधारक को उस अन्तर के लिये प्रतिकर का संदाय करे जो उसे वस्तुतः आबंटित किए गए भाग और उस भाग के बीच हो जिसके लिए वह हकदार है।"

"3. जब कभी हिस्साधारक चाहते हों या **जब न्यायालय को सम्पत्ति का विभाजन नियम 1 या 2 के अनुसार करना असंभव प्रतीत होता हो**, तो सम्पूर्ण विभाज्य सम्पत्ति या उसके किसी भाग का मूल्य न्यायालय द्वारा उसके वास्तविक मूल्य के अनुसार आंका जाना चाहिए, और उसे प्ररक्षित कीमत (अपसेट प्राइज) मानकर, उसका विक्रय उस हिस्साधारक को करवाना चाहिए जो प्ररक्षित कीमत के ऊपर अधिकतम कीमत चुकाए। यदि हिस्साधारकों में से कोई भी हिस्साधारक क्रय नहीं करना चाहता हो या प्ररक्षित कीमत पर क्रय करना चाहता हो तो, पड़ोसियों को उस सम्पत्ति के लिए प्रतिस्पर्धा करने के लिए मौका दिया जाना चाहिए, और उसका विक्रय उस पड़ोसी को किया जाना चाहिए जो प्ररक्षित मूल्य की तुलना में अधिकतम कीमत चुकाए। यदि पड़ोसी सामने नहीं आते तो प्ररक्षित कीमत पर ध्यान दिये बिना उसका सार्वजनिक विक्रय सिविल प्रोसीज़र कोड के अध्याय 19 के नियमों, जहां तक कि वे लागू होते हैं, के अनुसार किया जाना चाहिए।"

उनके विचारों का समर्थन[2] सर ए० आर० स्कोबिक, क्यू० सी० की समीक्षा में किया गया।

समानीकरण के बारे में विनिश्चय।

2.10. चूंकि समीक्षाओं में से कुछ समीक्षाओं में विधेयक के कुछ प्रस्तावों के प्रति विरोध प्रकट किया गया, अतः यह समझा गया कि हिस्सों[3] के समानीकरण की शक्ति कौटुम्बिक गृह को छोड़कर

---

1. नीचे का पैरा 2.12 भी देखिए।

2. नीचे का पैरा 2.13।

3. इस शक्ति की विवेचना अशानुल्ला विरुद्ध काली किंकर (1884) आइ०एल०आर० 10 कलकत्ता 675, 676 में की गई थी।

समस्त साधारण मामलों की पूर्ति के लिये पर्याप्त थी। कलकत्ता हाइकोर्ट का (परव्यक्ति द्वारा हिस्से के संबंध में) सुझाव[1] भी स्वीकार कर लिया गया। भारत सरकार का यह विनिश्चय अनंतिम था।

डा० रेटीगन और श्री इवान्स के विचार।

2.11. तथापि, अन्तिम, विनिश्चय करने के पूर्व, सरकार ने दो विधिक विशेषज्ञों, डा०डबल्यू०बी० रेटीगन और श्री जी०एन०पी० इवान्स की सलाह मांगी। डा० रेटीगन, विधेयक के संबंध में आपत्तियां प्राप्त होने के बावजूद भी, विधेयक के पक्ष में थे। उन्होंने विभाजन विधि के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए यह विचार व्यक्त किया कि यह कथन करने के लिये प्रमाण उपलब्ध था कि हिन्दू विधि में भी, प्रकृति द्वारा अविभाज्य सम्पत्ति की दशा में, विभाजन युक्ति या साम्या के अनुसार किया जाना होता था, और ऐसे मामले में अभिव्यक्त रूप से मान्य एक तरीका सम्पत्ति का विक्रय और आगमों का विभाजन करना था।[2] उन्होंने इस बात का उल्लेख किया कि मुस्लिम विधि[3] के अनुसार किसी ऐसे गृह का, जिसके साथ कोई भूमि संलग्न हो, विभाजन करते समय, धन के प्रतिकर का आदेश दिया जा सकता है। उन्होंने उस समय विद्यमान इण्डियन स्टेट्यूट ला (अर्थात् सिविल प्रोसीजर कोड, 1882 की धारा 265 और 396) के प्रति निर्देश किया और यह विचार व्यक्त किया कि जब कि समानीकरण के लिए उन धाराओं द्वारा धन के प्रतिकर को प्राधिकृत किया गया था, उन धाराओं में एकल सम्पत्ति (जैसे निवासगृह), जिसका विभाजन नहीं किया जा सकता था, के विभाजन के मामलों के समाधान के लिए कोई उपबन्ध अन्तर्विष्ट नहीं था।

डा० रैटीगन ने पंजाब के मामले[4] में व्यक्त किए गए विचारों के प्रति भी निर्देश किया जिसमें उन मामलों के, जिनमें किसी गृह का विभाजन नहीं किया जा सकता था, संबंध में उचित प्रकार से कार्यवाही करने के लिए समर्थकारी विधि के अभाव का उल्लेख किया गया था, और यह बताया गया था कि पक्षकारों को एक दूसरे का हिस्सा खरीदने के लिए या अपने-अपने हिस्सों को एक दूसरे के हिस्सों के साथ छांटने की असाधारण युक्ति करने की स्वतंत्रता दी जाती थी। उन्होंने यह बताया कि यह आशंका कि यथा प्रस्तावित खण्ड 4 के अधीन धनवान व्यक्ति गरीब हिस्साधारकों को तंग करेंगे, न्यायोचित नहीं थी क्योंकि न्यायालय को विवेकाधिकार प्राप्त था। तथापि, जनता में अधिक विश्वास पैदा करने के लिए, उन्होंने इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि विक्रय का आदेश देने के पूर्व जिला न्यायालय की पूर्व मंजूरी आवश्यक थी।

श्री इवान्स के विचार—संयुक्त कुटुम्ब के कमजोर होने का समर्थन नहीं किया गया।

2.12. तथापि, श्री जी० एच० पी० इवान्स का यह विचार था कि निसंदेह रूप से, जबकि विभाजन मामलों में बहुत कठिनाई उपस्थित हुई है, और विक्रय का निदेश देने की शक्ति होने से बहुत सरलता हो जायगी, फिर भी ऐसा कोई भी उपाय जिसका, जो संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब पद्धति को विघटित करने की प्रवृत्ति रखता है, बहुत अधिक विरोध किया जायगा, और कोई भी ऐसा उपाय लागू करने के लिए उपयुक्त समय नहीं था।

सर ए० आर० स्कोबिक, क्यू०सी० के विचार।

2.13. इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि सरकार ने सर ए०आर०स्कोबिक, क्यू०सी० को कागजपत्र दिखलाए थे और उनका यह विचार था कि जहां करार द्वारा विभाजन नहीं किया जा सकता हो, वहां अविभाजित हिस्से का, या अधिकार, हक और हित का सार्वजनिक विक्रय केवल तभी अनुज्ञेय होना चाहिए जब कुटुम्ब के अन्य सदस्यों ने विभाजन का दावा करने वाले सदस्य का हिस्सा युक्तियुक्त कीमत पर क्रय करने से इन्कार कर दिया हो। उनकी राय में, श्री बी०सी०सील[5] के सुझाव प्रशंसनीय थे। ये ही वे परिस्थितियां थीं जिनमें यह विधेयक पुरःस्थापित किए जाने के पूर्व उपान्तरित किया गया था।

---

1. ऊपर का पैरा 2.7।
2. डा० डब्ल्यू०एच० रेटीगन, कमेन्ट ऑन दी पार्टीशन बिल।
3. हिडाया, बुक 39, चेपटर 3।
4. पंजाब रिकार्ड केस नं० 15/1878, सर डेनिस फिट्जपैट्रिक, जे०।
5. ऊपर का पैरा 2.9।

2.14. डा० राश बिहारी घोष ने विधेयक[1] को पुरःस्थापित करने का प्रस्ताव करते समय यह विचार व्यक्त किया कि विधि का संशोधन इस कारण अपेक्षित था कि विधान मण्डल द्वारा उन परिस्थितियों को, जिनमें न्यायिक गत्यावरोध संभव हो सकता था, तटस्थता से नहीं देखा जा सकता था। उन्होंने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि विक्रय का आदेश देने के पूर्व पालन की जाने के लिए कठोर शर्तें विधेयक द्वारा अधिरोपित की गई थीं और उनमें से एक शर्त यह थी कि कम से कम आधे हिस्सेदारों को विक्रय से सहमत होना चाहिए। उन्होंने बृहस्पति[2] के इस पाठ के प्रति भी निर्देश किया कि वस्त्रों और आभूषणों की दशा में, उनके विक्रय के पश्चात् कीमत का समान वितरण किया जाता था। डा० राश बिहारी घोष का भाषण।

2.15. गवर्नर जनरल की[3] काउन्सिल की कार्यवाहियों से यह प्रतीत होगा कि डा० राश बिहारी घोष इस आलोचना से अवगत थे कि विधेयक द्वारा अधिरोपित किए गए कुछ निर्बन्धन अनावश्यक थे किन्तु उन्होंने यह उत्तर दिया कि "स्पष्ट कारणों से, इतने नाजुक मामलों में व्यापक परिवर्तन को सदैव अनुत्साहित किया जाना चाहिए और यह कि हम अत्यधिक सावधानी से अग्रसर नहीं हो सकते।" गवर्नर जनरल इन काउन्सिल की कार्यवाहियां।

1. गवर्नर जनरल ऑफ इण्डिया की काउन्सिल की कार्यवाहियां, 25 मार्च, 1892।
2. डाइजेस्ट वाल्यूम 366।
3. गवर्नर जनरल इन काउन्सिल तारीख 9 मार्च, 1893।

अध्याय 3

अधिनियम की स्कीम और तत्सदृश उपबन्ध

समवर्ती हित ।

3.1. इस अधिनियम की स्कीम को समझने के लिए, हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि समवर्ती हित क्या हैं । (भूमि या, जहां तक उसका संबंध है, कोई अन्य सम्पत्ति) पृथक्-पृथक् स्वामित्व की या सहस्वामित्व की विषयवस्तु हो सकती है जहां दो या अधिक व्यक्ति भूमि (या अन्य सम्पत्ति में) एक साथ हित रखते हैं, वहां उनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वे उसे साथ-साथ धारण करते हैं और उनका हित समवर्ती है ।[1]

विभाजन ।

3.2 जब तक वे व्यक्ति जो समवर्ती हित रखते हैं, उस सम्पत्ति का उपभोग सामान्य रूप से करते हैं, विधि कोई हस्तक्षेप नहीं करती । तथापि, जब पृथक् उपभोग के लिए इच्छा उत्पन्न हो जाती है तब विधि को उन विरोधों के प्रकाश में, जो उत्पन्न हो सकते हैं, अधिकारों और दायित्वों का विनियमन करना चाहिए । विधिक पद "विभाजन" उन भूमियों, वासगृहों और आनुवंशिक सम्पत्ति के, जो सहस्वामियों की हों, विभाजन और उनके बीच भागों[2] के ऐस आबंटन जिससे उनमें से कुछ के बीच या सभी के बीच स्वामित्व की सामूहिकता को समाप्त किया जा सके, के संबंध में लागू की जाती है । सहस्वामी संयुक्त अभिधारी हो सकते हैं, सामान्यिक अभिधारी हो सकते हैं या सहदायिक हो सकते हैं ।

इस प्रकार, यदि तीन व्यक्ति ब्लेक एकड़, व्हाइट एकड़ और ग्रीन एकड़ के सहस्वामी (उत्तराधिकारमुक्त भू-सम्पत्ति अभिधारक) हैं, तो वह संव्यवहार, जिसके द्वारा उनमें से एक ब्लेक एकड़ का, दूसरा व्हाइट एकड़ का और तीसरा ग्रीन एकड़ का उत्तराधिकार युक्त भू-सम्पत्ति का अभिधारक बन जाता है, विभाजन है ।

इस प्रकार, विभाजन वह विधिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा संयुक्त सम्पत्ति के सहस्वामियों का हक और कब्जा विनिर्दिष्ट मद या मदों के संबंध में प्रत्येक सहस्वामी के पृथक् हक और कब्जे में संपरिवर्तित हो जाती है । सयुक्त सम्पत्ति वर्गों में विभाजित की जाती है और पूर्व-सहस्वामियों में से प्रत्येक सहस्वामी को उसके हिस्से में आने वाली विनिर्दिष्ट परिमाण की सम्पत्ति का कब्जा दिया जाता है । तथापि, कुछ मामलों में, विभाजन सुविधाजनक नहीं होता और अधिनियम उस स्थिति का ध्यान रखते हुये यथोचित विकल्पों के लिए उपबन्ध करता है ।

1892 के अधिनियम की व्याप्ति ।

3.3. यह अधिनियम विभाजन की सम्पूर्ण विधि की व्याख्या करने के लिये तात्पर्यित नहीं है । यह बात लम्बे नाम से स्पष्ट हो जाती है जिसमें अधिनियम के बारे में यह कहा गया है कि वह विभाजन विधि को संशोधित करने के हेतु अधिनियम है । विभाजन, अर्थात् अविभक्त सम्पत्ति के पृथक्-पृथक् हिस्सों में विभाजन से सुसंगत मूल विधि का विचार इस अधिनियम में नहीं किया गया है । वह सम्पत्ति विधि के क्षेत्र के अन्तर्गत या कतिपय मामलों में स्वीय विधि के उन नियमों के अन्तर्गत आती है जो सहदायिकों के या अन्य सहदायिकों के आपसी सांपत्तिक अधिकारों से संबंधित है । यह अधिनियम मख्यतः विभाजन के लिए वाद के रूप में उपचार (अर्थात् जब न्यायालयीन तंत्र के माध्यम से विभाजन चाहा जाता है) के क्षेत्र से संबंधित है । यह प्रक्रिया विधि से सबंधित हैं ।[3] इस क्षेत्र में भी, यह अधिनियम केवल सीमित क्षेत्र को आवृत्त करता है अर्थात्, (क) व मामले जिनमें सम्पत्ति का विभाजन सुविधाजनक नहीं है, और पूरी सम्पत्ति का विक्रय[4] किया जाना हो, या (ख) वे मामले जिनमें विभाजन

---

1. ब्लेक लॉ डिक्शनरी (1979), पृ० 264 से तुलना कीजिए ।
2. हेल्सबरी, तृतीय संस्करण, वाल्यूम 29, पृ० 343, पैरा 539, वाल्यूम 14 (इक्विटी) पृ० 501-502 भी देखिए ।
3. ऊपर का अध्याय 1 ।
4. धारा 2 ।

के लिए हकदार पक्षकारों[1] में से **एक पक्षकार** के (या उसके अंतरिती के)[2] हिस्से का विक्रय आवश्यक समझा जाता है ।

3.4. इस अधिनियम में जिन दो विषयों का विवेचन किया गया है, वे निम्नलिखित हैं :— अधिनियम की स्कीम

(क) विभाजन वादों में **विभाजन के बदले विक्रय** का आदेश देने की न्यायालय की शक्ति (धारा 2), और

(ख) कुटुम्ब के किसी सदस्य का अविभक्त कुटुम्ब के निवासगृह में के ऐसे हिस्से का क्रय करने का अधिकार जो ऐसा हिस्सा हो जो किसी पर-व्यक्ति को अन्तरित कर दिया गया हो (धारा 4) । अधिनियम की स्कीम संक्षेप में इस प्रकार है—

3.5. धाराएं 1 (1) और 1(2) प्रारंभिक विषयों से संबंधित हैं । धारा 1(4) में यह उपबन्ध किया गया है कि यह अधिनियम किसी ऐसे स्थानीय विधि पर प्रभाव नहीं डालता जिसके द्वारा सरकार को राजस्व देने वाली किसी स्थावर सम्पत्ति के विभाजन के लिए उपबन्ध किया गया हो । उपबन्धों का संक्षेप कथन ।

धारा 2 के अधीन, विभाजन के किसी ऐसे वाद में, जिसमें यदि यह अधिनियम पारित नहीं किया गया होता, विभाजन के लिये डिक्री दी जा सकती थी, यदि न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि—(क) उस सम्पत्ति के प्रकृति के कारण जिससे कि वाद संबंधित है, या उसके हिस्साधारकों की संख्या के कारण या किन्हीं अन्य विशष परिस्थितियों के कारण उस सम्पत्ति का विभाजन युक्तियुक्त रूप से या सुविधाजनक रूप से नहीं किया जा सकता हो, और (ख) सभी हिस्साधारकों के लिए यह अधिक फायदाप्रद होगा कि सम्पत्ति का विक्रय करके आगमों का वितरण कर दिया जाय तो न्यायालय सम्पत्ति के आधे भाग या उससे अधिक भाग में हितबद्ध हिस्साधारकों के अनुरोध पर, उस सम्पत्ति के विक्रय और आगमों के वितरण का आदेश दे सकेगा । ऐसे विक्रय का अनुरोध सम्पत्ति के आधे भाग में हितबद्ध हिस्साधारकों द्वारा किया जाने की दशा में, धारा 3 यह उपबन्ध करती है कि कोई अन्य हिस्साधारक उस पक्षकार या उन पक्षकारों के हिस्से या हिस्सों का क्रय करने की इजाजत के लिए आवेदन कर सकता है जो ऐसे विक्रय के लिए आवेदन करते हैं, और तदुपरि न्यायालय हिस्सा या हिस्सों के मूल्यांकन का आदेश करेगा और उनके विक्रय की प्रस्थापना आवेदक को करेगा । इस धारा में इस बारे में भी उपबन्ध अन्तर्विष्ट है कि क्रय करने वाले हिस्साधारकों में प्रतिस्पर्धा होने की दशा में क्या होगा? बोली लगाने के बारे में और धारा 2 के अधीन विक्रय संचालित करने के बारे में विस्तृत उपबन्ध धारा 6 और धारा 7 में अन्तर्विष्ट हैं ।

धारा 4 कुटुम्ब के किसी सदस्य द्वारा ऐसे परव्यक्ति के हिस्से का क्रय करने के संबंध में हैं जो उस दशा में विभाजन के लिए वाद लाता है जबकि हिस्सा अविभक्त कुटुम्ब के निवासगृह से संबंधित हो ।

धारा 5, जो धाराओं के दोनों समूहों में एक जैसी है, निर्योग्यता से ग्रस्त पक्षकारों के प्रतिनिधित्व से संबंधित है । धारा 6 और धारा 7 के प्रति पहले ही निर्देश किया जा चुका है । धारा 8 के अधीन, न्यायालय द्वारा अधिनियम के अधीन विक्रय के लिए किए गए आदेशों को सिविल प्रोसीजर कोड की धारा 8 के अर्थ के अन्तर्गत डिक्री समझा जाता है । धारा 9, अधिनियम के अधीन वाद में सम्पत्ति के भाग के विभाजन के लिए और शेष सम्पत्ति के विक्रय के लिए डिक्री देने की न्यायालय की शक्ति को आरक्षित करती है । धारा 10 लम्बित वादों को अधिनियम के लागू होने के संबंध में है ।

3.6. अधिनियम की आवर्ती विषयवस्तु सम्पत्ति या हिस्से का विक्रय पर प्रकाश डालना आवश्यक है । अधिनियम में अनेक प्रकार के विक्रयों पर विचार किया गया है । प्रथमतः धारा 2 के अधिन विक्रय है । विक्रय का आदेश उन हिस्साधारकों के आवेदन पर किया जा सकता है जो सम्पत्ति के आधे भाग या उससे अधिक भाग में हितबद्ध हों, किन्तु न्यायालय के लिये यह आबद्धकर नहीं है कि वह आवेदन को मंजूर करे । अधिनियम के अधीन विक्रयों के प्रकार ।

द्वितीयतः, धारा 3 के अधीन विक्रय है । यदि कोई अन्य हिस्साधारक उन हिस्साधारकों का हिस्सा या हिस्से खरीदने के लिए आवेदन करता है जो धारा 2 के अधीन सार्वजनिक नीलाम द्वारा विक्रय कराना चाहते है तो उन्हे ऐसा करने का अधिकार है । इस स्थिति में, विक्रय आज्ञापक है,

1. धारा 3(1) ।
2. धारा 4(1) ।

किन्तु यह विक्रय केवल उन हिस्साधारकों के हिस्सों का होता है जिन्होंने धारा 2 के अधीन आवेदन किया है। यह सार्वजनिक विक्रय[1] नहीं है वरन् सह-हिस्साधारकों के मध्ये[2] **विक्रय** है।

विक्रयों का तीसरा प्रवर्ग वह है जिसके संबंध में धारा 4 में विचार किया गया है, जिसके अधीन हिस्से के किसी पर-व्यक्ति क्रेता (अंतरिती) को अपना हिस्सा कुटुम्ब के किसी ऐसे सदस्य को बेचने के लिए विवश किया जा सकता है जिसने ऐसे क्रय के लिए आवेदन किया हो। इस स्थिति में, न्यायालय आवेदन मंजूर करने के लिए आबद्ध है, और इस प्रकार विक्रय आज्ञापक है। विक्रय सम्पूर्ण सम्पत्ति का न होकर केवल अंतरिती के हिस्से का ही होता है। यह विक्रय **सार्वजनिक नीलाम द्वारा** नहीं कराया जाता वरन् वह अंतरिती से आवेदक को किया जाता है।

तत्सदृश विधियां।

3.7. विभाजन अधिनियम के अतिरिक्त, कुछ अन्य अधिनियमितियों में ऐसे उपबन्ध अन्तर्विष्ट हैं जो इस अधिनियम के समान या उससे संबद्ध हैं। इनमें से, सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपबन्ध सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम[3] की धारा 44 में अन्तर्विष्ट उपबन्ध है जो निवासगृहों से संबद्ध है। यह उपबन्ध निम्नानुसार है—

> "जहां अविभक्त कुटुम्ब के निवासगृह के किसी हिस्से का अंतरिती कुटुम्ब का सदस्य न हो, वहां इस धारा में की किसी भी बात के संबंध में यह नहीं समझा जायगा कि वह उसे संयुक्त कब्जे या अन्य सामान्यिक या भागिक उपभोग के लिए हकदार बनाती है।"

सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की इसी धारा[4] के कारण विभाजन अधिनियम की धारा 4 अधिनियमित की गई थी। हम उसके बारे में आगे[5] विस्तार से विचार करेंगे।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 22।

3.8. पर-व्यक्तियों को अपवर्जित करने के उसी सिद्धान्त पर आधारित एक अन्य तत्सदृश उपबन्ध हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 22 में अन्तर्विष्ट है जो सहअंशधारियों को अग्रक्रय का अधिकार देती है।

सिविल प्रक्रिया संहिता, आदेश 21, नियम 88।

3.9. सहअंशधारी को अधिमान देने का वही सिद्धान्त सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21, नियम 88 में अन्तर्निहित है। उसमें यह उपबन्ध किया गया है कि जहां किसी डिक्री के निष्पादन में अविभक्त स्थावर सम्पत्ति का विक्रय किया जाता है, और दो या अधिक व्यक्ति, जिनमें से एक सहदायिक हो, ऐसी सम्पत्ति या किसी लाट के लिए एक ही बोली लगाते हैं, तो बोली सहअंशधारियों[6] की ही समझी जायगी। इस नियम का उद्देश्य अविभक्त स्थावर सम्पत्ति के सहअंशधारियों को, यदि वे ऐसा चाहते[7] हैं, पर-व्यक्तियों को बाहर रखने के लिए समर्थ बनाना है। सारतः, इस नियम का प्रभाव यह है कि यदि नियम में दी गई अन्य शर्तों की पूर्ति हो जाती है तो बोली लगाने वाले सहअंशधारी को अंश का अग्रक्रय करने का अधिकार दिया जाय। इस प्रकार यह नियम अविभक्त सम्पत्ति के सहअंशधारियों के अधिकारों की रक्षा करता है।[8]

धन के रूप में प्रतिकर अधिनिर्णीत करने की साधारण शक्ति।

3.10. अन्ततः, न्यायालय को विभाजन में हिस्सों का आबंटन करते समय यह **साधारण शक्ति** होती है कि वह धन के रूप में प्रतिकर अधिनिर्णीत करे। जहां भूमि या अन्य सम्पत्ति का विभाजन किया जाता है और पक्षकारों को आबंटित किए गए अंश असमान मूल्य के होते हैं, वहां कम मूल्य वाले भाग

---

1. धारा 3(2) देखिए।
2. हरी चरण विरुद्ध फकीरचन्द (1936) 40 सी० डब्ल्यू० एन० 965।
3. सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 44 का दूसरा पैरा।
4. ऊपर का पैरा 2.3 भी देखिए।
5. धारा 4 के संबंध में विवेचना देखिए—नीचे के पैरा 7.1 से 7.9 तक।
6. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 21, नियम 88।
7. दाम्बार सींग विरुद्ध मुरारी लाल, ए० आई० आर० 1914, इलाहाबाद, 426।
8. मुन्नालाल विरुद्ध गोपीलाल, ए० आई० आर० 1940, नागपुर, 337 से तुलना कीजिए।

के स्वामी को धनराशि या अन्य प्रतिकर का अधिनिर्णयन सदैव न्यायालय की शक्ति के अन्तर्गत माना गया है। इस प्रकार अधिनिर्णीत प्रतिकर समतुल्य धन (ओवेल्टी) कहलाता है।[1]

इस विषय पर उच्चतम न्यायालय के निर्णय[2] में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। जब विभाजन होने पर किसी सदस्य के लिए, किसी अन्य सदस्य को अधिक अंश आबंटित कर दिए जाने के कारण, अंशों के समानीकरण के लिए समतुल्य धन अधिनिर्णीत किया जाता है तब समतुल्य धन का ऐसा उपबन्ध साधारणतः विभाजन के अधीन की गई भूमि पर धारणाधिकार या भार सृजित करता है।[3] इस प्रकार, "समतुल्य धन" को उस अन्तर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो विभाजन का समानीकरण करने के प्रयोजन के लिए एक सहदायिक या सहअभिधारी और दूसरे के बीच संदत्त किया जा सकता है या प्राप्त किया जा सकता है।[4]

1. जोविट, डिक्शनरी ऑफ इंगलिश लॉ (1959) वाल्यूम 2, पृ० 1283।
2. टी०एस० स्वामीनाथ विरुद्ध वेस्ट तन्जोर का शासकीय रिसीवर, ए० आई० आर० 1957, एस० सी० 577, 588, पैरा 14 और 18।
3. टी० एस० स्वामीनाथ विरुद्ध वेस्ट तन्जोर का शासकीय रिसीवर, ए० आई० आर० 1957, एस० सी० 577।
4. सानवियर, लॉ डिक्शनरी, वाल्यूम 2, पृ० 2437, जिसमें कोक और वाइनर को सम्मिलित करते हुए सारतः इसी आशय की विभिन्न नजीरें दी गई हैं।

अध्याय 4

अंग्रेजी विधि

अंग्रेजी विधी का उद्भव।

4.1. विभाजन से संबंधित अंग्रेजी विधि का उद्भव दिलचस्प है। अंशतः, विभाजन वादों में उपचारों, जैसे कि वे कामन ला में समझे जाते थे, के बारे में स्थिति की पृष्ठभूमि में भारतीय विधायी प्रस्थापनाएं सूचित की गई थीं। अंग्रेजी विधि का उद्भव निम्नलिखित स्थूल प्रक्रमों के माध्यम से हुआ है—

(एक) उपलभ्य उपचार केवल विभाजन (भौतिक) है,

(दो) उपरोक्त उपचार के अतिरिक्त, प्रतिकर उपलभ्य किया गया है,

(तीन) उपरोक्त उपचारों के अतिरिक्त, विक्रय अनुज्ञात किया गया है,

(चार) विक्रय न केवल उपलभ्य कराया गया है वरन् सहस्वामियों के बीच असहमति होने की दशा में अनिवार्य बनाया गया है।

भारत में स्थिति।

4.2. भारत में, विक्रय की शक्ति के संबंध में विधिक स्थिति वैसी ही प्रतीत होती है जैसी कि इंग्लैंड में इस विषय पर पारित किए गए कानून द्वारा विधि के संशोधन के पूर्व थी। न्यायालय को किसी विभाजन वाद में[1] किसी सम्पत्ति के विक्रय का निदेश देने की कोई शक्ति नहीं थी। पार्टीशन ऐक्ट, 1893 ने पहली बार यह संभव बनाया कि वह कतिपय परिस्थितियों में विक्रय का निदेश दे सके, किन्तु न्यायालय को प्रदत्त की गई यह शक्ति सीमित शक्ति है जैसा कि उसके उपबन्धों के परीक्षण से स्पष्ट है।

इस रिपोर्ट को अंग्रेजी विधि के ब्यौरों से बोझिल बनाना आवश्यक नहीं है। ये इस अधिनियम के परिशिष्ट[2] में दिए गए हैं।

1. गदाधर विरुद्ध जानकी नाथ, ए० आई० आर०, 1969 कलकत्ता, 59।

2. देखिए परिशिष्ट 3।

अध्याय 5

विक्रय की शक्ति : धारा 1-2

धाराओं पर विचार।

5.1. अब हम अधिनियम की प्रत्येक धारा पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे––

धारा 1.

5.2. धारा 1 प्रारूपिक या प्रारंभिक विषयों (संक्षिप्त नाम और विस्तार) से संबंधित है।

धारा 2 और विक्रय की अन्तर्निहित शक्ति।

5.3. अधिनियम की धारा 2 न्यायालय को इस बात के लिए सशक्त करती है कि वह किसी वाद में, कतिपय परिस्थितियों में सम्पत्ति के विक्रय का आदेश करे। यह धारा इस प्रकार है :––

"2. **विभाजनवादों में विभाजन के बदले विक्रय का आदेश देने की न्यायालय की शक्ति**––जब कभी विभाजन के किसी ऐसे वाद में, जिसमें यदि वह वाद इस अधिनियम के पहले संस्थित किया गया होता तो विभाजन के लिए डिक्री दी जा सकती थी, न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि जिस सम्पत्ति से वह संबंधित है उसकी प्रकृति या उसके हिस्साधारकों की संख्या या किसी अन्य विशेष परिस्थिति के कारण उस सम्पत्ति का विभाजन युक्तियुक्त रूप से या सुविधापूर्वक नहीं किया जा सकता है और सभी हिस्साधारकों के लिए यह फायदाप्रद होगा कि सम्पत्ति का विक्रय करके आगमों का वितरण कर दिया जाय तो यदि न्यायालय ठीक समझे तो वह ऐसे किन्हीं हिस्साधारकों के अनुरोध पर जो उस सम्पत्ति में अलग-अलग या सामूहिक रूप से हितबद्ध हैं, और जिनका उस सम्पत्ति में हित आधा या उससे अधिक है, उस सम्पत्ति के विक्रय और आगमों के वितरण का निदेश दे सकेगा।"

इस प्रकार यह धारा, पूर्व इसके कि विक्रय का आदेश दिया जाय, यह अपेक्षा करती है कि आवेदन सम्पत्ति में कम से कम आधा हिस्सा धारण करने वाले व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए और उस धारा में विनिर्दिष्ट शर्तों की भी पूर्ति होनी चाहिए।

अधिनियम के अलावा विक्रय का आदेश देने की अधिकारिता।

5.4. चूंकि यह अपेक्षा कि आवेदन आधा हिस्सा धारण करने वाले व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए, व्यवहार में कठोर प्रतीत हुई है, समय-समय पर इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि न्यायालय धारा 2 के उपबन्धों के अलावा भी विक्रय का आदेश दे सकता है। इस विषय पर दिए गए विनिर्णय परस्पर विरोधी हैं, और विश्लेषण करने पर यह प्रकट होता है कि इस प्रश्न पर निम्नलिखित दृष्टिकोण अपनाए गए हैं :––

(एक) न्यायालय अधिनियम पर आश्रित हुए बिना ही विक्रय का आदेश दे सकता है और ऐसा विक्रय न केवल सह-अंशधारियों के बीच किया जाने का आदेश दिया जा सकता है वरन् (जनता को) सार्वजनिक नीलाम द्वारा किये जाने के लिए भी दिया जा सकता है।

(दो) ऐसी शक्ति का विस्तार सीमित है––विक्रय केवल सह-अंशधारियों के बीच ही किया जाना चाहिए।

(तीन) न्यायालय द्वारा विक्रय का आदेश केवल समस्त सह-अंशधारियों की सम्मति से ही दिया जा सकता है।

(चार) धारा 2 के अलावा **कोई ऐसी शक्ति विद्यमान नहीं है** और उसके अलावा, सार्वजनिक नीलाम द्वारा या सह-अंशधारियों के बीच विक्रय का आदेश नहीं दिया जा सकता।

यह विशिष्ट प्रश्न उच्चतम न्यायालय[1] द्वारा विनिश्चित नहीं किया गया है, तथापि उसने ऐसे समुचित साम्यापूर्ण साधनों द्वारा, जो समुचित हों, विभाजन करने की न्यायालय की शक्ति को मान्य किया है।

उपरोक्त चार दृष्टिकोणों में से एक या दूसरे दृष्टिकोण का समर्थन करने वाली निर्णयज विधि के बारे में यहां विचार किया जा सकता है।

---

1. बद्रीनारायण विरुद्ध नील रतन, ए०आई०आर० 1978 एस०सी० 845।

3—371 एल०ए०डी०/एन०डी०/81

प्रथम दृष्टिकोण ।

5.5 प्रथम दृष्टिकोण, अर्थात्, न्यायालय, अधिनियम पर आश्रित हुए बिना, सार्वजनिक नीलाम द्वारा विक्रय का आदेश दे सकता है, आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय[1] के निर्णय द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है जिसने ऐसा ठहराने के लिए निम्नलिखित कारण दिये :—

(1) यह शक्ति हिन्दू विधि के अधीन विद्यमान है । हिन्दू विधि के कतिपय पाठ यह दर्शित करते हैं कि वस्त्र और आभूषणों का विभाजन, उनका विक्रय करने के पश्चात्[2] आगमों का वितरण करके किया जा सकता है, और यह कि कुछ मामलों में, जहां संयुक्त उपभोग या बारी-बारी से उपभोग संभव न हो, वहां कुछ मदों का विक्रय और आगमों का कुटुम्ब[3] के सदस्यों के बीच वितरण प्राधिकृत है । इसके अतिरिक्त, कई पाठों में इस प्रतिपादना पर बल दिया गया है कि सम्पत्ति का वर्ग, जैसे जल, मार्गाधिकार, यान, पका अन्न, दासियां आदि अविभाज्य हैं ।

(2) इस प्रभाव के अनेक न्यायिक विनिश्चय हैं कि विभाजन अधिनियम पर आश्रित हुए बिना, न्यायालय को यह अन्तर्निहित शक्ति है कि वह सम्पत्ति का विभाजन माप और सीमांकन करके करने से इन्कार कर दे ।

(3) यदि ऐसी शक्ति को मान्य नहीं किया जाता तो उससे गंभीर कठिनाइयां होंगी । उस स्थिति में जब कि सम्पत्तियों में से एक या अधिक सम्पत्तियां साम्यापूर्वक विभाजित नहीं की जा सकती हों, या जब सभी पक्षकार, एक साथ दुरभिसंधि करके गतिरोध पैदा कर देते हैं, न्यायालय सम्पत्ति का साम्यापूर्ण वितरण करने के लिए शक्तिरहित हो जाएगा और विभाजन की **प्रक्रिया** ही अवरुद्ध हो जायगी ।

(4) विभाजन अधिनियम विशिष्ट आकस्मिकता की पूर्ति करने के लिए उद्दिष्ट थी, और सम्पत्ति का साम्यापूर्ण वितरण करने की न्यायालय की शक्ति को उसने किसी प्रकार प्रभावित नहीं किया ।

दूसरा दृष्टिकोण।

5.6 दूसरा दृष्टिकोण, अर्थात्, न्यायालय अधिनियम के अलावा भी **सह-अंशधारियों के बीच** वितरण का आदेश दे सकता है, कलकत्ता उच्च न्यायालय[4] के पूर्वतर विनिश्चयों में लिया गया है । जिस मामले का बहुधा उल्लेख किया जाता है, वह मामला न्यायाधीश सर आशुतोष मुकर्जी[5] द्वारा विनिश्चित किया गया मामला है जिसमें वादियों ने वाद करते हुए यह प्रार्थना की थी कि न्यायालय द्वारा किए जाने वाले मूल्यांकन पर प्रतिवादी की सम्पत्ति के अंश के आनुपातिक प्रतिकर का प्रतिवादी को संदाय किया जाने पर वादियों को सम्पत्ति का अनन्य कब्जा रखने की अनुज्ञा दी जाय । निचले न्यायालय समान रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्पत्ति का सुविधापूर्वक विभाजन नहीं किया जा सकता, और उनने वादियों को यह आदेश दिया कि वे प्रतिवादी को कमिश्नर द्वारा अवधारित किए गए मूल्य के एक-तिहाई का संदाय करने के पश्चात् कब्जा रखें । प्रतिवादी द्वारा अपील की जाने पर, उच्च न्यायालय ने यह ठहराया कि प्रतिवादी मूल्यांकन पर अपना अंश वादी को अंतरित करने के लिए बाध्य नहीं था, और कानूनी उपबन्ध के अभाव में, न्यायालय उसे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता था । चूंकि यह स्वीकार कर लिया गया था कि सम्पत्ति का विभाजन सुविधापूर्वक नहीं किया जा सकता था, उचित मार्ग यही था कि **सम्पत्ति का विक्रय सह अंशधारियों के बीच** किए जाने का निदेश दिया जाय और सम्पत्ति सह-अंशधारियों में से उस अंशधारी को दी जाय जो सबसे अधिक बोली लगाता है ।

पश्चात्‌वर्ती निर्णयज विधि ।

5.7. तथापि, बाद में उसी उच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट[6] किया कि यह निर्णय केवल उसी मामले तक सीमित था और विधि का यह सामान्य सिद्धान्त अधिकथित करने के लिए आशयित नहीं था कि किसी विभाजन वाद में न्यायालय को **विभाजन अधिनियम के अलावा** विक्रय का आदेश देने की

1. रामप्रसाद राव विरुद्ध सुब्रामइया, आई०एल०आर० (1957) आन्ध्र 566 ए०आई०आर० 1958 ए० बी० 647 (मुख्य न्यायाधीश सुब्बाराव और न्यायाधीश अन्सारी) बद्रीनारायण विरुद्ध नीलरतन, ए०आई०आर०, 1978 एस०सी० 845 में एक अन्य बिन्दु पर अनुमोदित किया गया ।
2. बृहस्पति : स्मृतिचन्द्रिका-सात, 41 में यथा उद्धृत ।
3. कात्यायन : स्मृतिचन्द्रिका-सात, 47 में यथा उद्धृत ।
4. पूर्व के निर्णय पन्नालाल विरुद्ध हृषीकेश, आई० एल० आर० (1949) 1 कलकत्ता, 192 (न्यायाधीश एस०बी० सिन्हा) में संगृहीत हैं ।
5. देवेन्द्र नाथ विरुद्ध हरीदास (1910) 15 कलकत्ता, वीकली नोट्स 552 ।
6. अतुलचन्द्र विरुद्ध भूषण चन्द्र, ए०आई०आर० 1926, कलकत्ता 1190 (न्यायाधीश वर्नुमिग और पेज) ।

शक्ति है। पश्चात्वर्ती मामले[1] में जो निष्कर्ष निकाला गया वह यह था कि उन मामलों में, जिनमें पक्षकारों की अभ्यर्थना केवल सह-अंशधारियों के बीच विभाजन करने के लिये हो, विक्रय का आदेश देने की अपरिभाषित और अनिश्चित अन्तर्निहित शक्तियों के आधार पर विभाजन अधिनियम के प्रभाव को क्षीण नहीं किया जा सकता। यह ठहराया गया कि विवादग्रस्त सम्पत्ति का विक्रय सह-अंशधारियों के बीच भी किए जाने का आदेश भी उसी मामले में उस आशय की प्रार्थना न की जाने की दशा में नहीं किया जा सकता।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के इसके पश्चात् के विनिश्चय[2] में इस दृष्टिकोण की पुनः अभिपुष्टि की गई कि विक्रय का निदेश देने की शक्ति उन मामलों तक सीमित रहनी चाहिए जिनके लिए अधिनियम में उपबन्ध किया गया है।

तीसरा दृष्टिकोण—सम्मति से विक्रय।

5.8. तीसरा दृष्टिकोण, अर्थात् अधिनियम के अलावा विक्रय का निदेश सह-अंशधारियों की सम्मति से दिया जा सकता है, कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक विनिश्चय[3] में किया गया है। किन्तु कलकत्ता का विनिश्चय बाद[4] में उलट दिया गया।

मद्रास के मामले में[5] की गई उक्ति के अनुसार, सम्मति से किया गया विक्रय अधिनियम बाह्य है।

चौथा दृष्टिकोण।

5.9. चौथे दृष्टिकोण पर अर्थात्, विक्रय का आदेश देने की शक्ति का प्रयोग अधिनियम की सीमाओं के भीतर ही किया जाना चाहिए, कलकत्ता उच्च न्यायालय के विनिश्चय में[6] बल दिया गया। इस मामले में यह ठहराया गया है कि अधिनियम का आशय विक्रय के लिए अपर्याप्त आधारों पर या अनुचित हेतु से किए गए अनुरोध को रोकना था। और सह-अंशधारियों को अग्रक्रय का अधिकार प्रदान करके और विक्रय को सह-अंशधारियों के बीच सीमित करके संयुक्त सम्पत्तियों में सह-अंशधारियों के अधिकारों की रक्षा करना था।

डा० राश बिहारी घोष के विचार।

5.10. निर्णय में डा० राश बिहारी घोष के भाषण का उल्लेख किया गया था, जिन्होंने विधेयक[7] पुरःस्थापित करते समय निम्नलिखित विचार व्यक्त किए थे :—

> "...किन्तु किसी भी देशवासी का भू-सम्पत्ति के, विशेषतः जब वह पैतृक हो, प्रति जो लगाव होता है, उसे दृष्टि में रख कर हमें किसी भी विशिष्ट मामले में, सम्पत्ति के समान विभाजन के प्रायिक उपचार के स्थान पर सम्पत्ति के मापमान और आगमों के वितरण को स्थापित करने में बहुत सावधान रहना चाहिए। अतः हम आवश्यकता से अधिक सतर्कता से अग्रसर नहीं हो सकते और तदनुसार वह शक्ति जो न्यायालय में निहित की जाने के लिये प्रस्तावित है बहुत कठोर शर्तों के अधीन और केवल उस सीमा तक दी जाती है जो अभिस्वीकृत बुराई का मुकाबला करने के लिये आवश्यक है।"

निर्णय में यह विचार भी व्यक्त किया गया था कि यदि न्यायालय को विक्रय का निदेश देने की शक्ति होती तो 1893 का अधिनियम अधिनियमित करने की आवश्यकता ही नहीं होती। प्रथमतः, विभाजन के किसी वाद में किसी सह-अंशधारी को विनिर्दिष्ट हिस्सों में विभाजित की गई सम्पत्ति में अपना अभिव्यक्त अंश प्राप्त करने का अधिकार है न कि अपने अंश को धनीय मूल्य प्राप्त करने का। विभाजन वाद न्यायालय से इस बात की अभ्यर्थना मात्र है कि वह संयुक्त कब्जे को अंशों के अनुसार विभिन्न भागों के पृथक्-पृथक् कब्जे में संपरिवर्तित कर दे। कामन लॉ में, विभाजन के बदले विक्रय का

---

1. नृत्य गोपाल विरुद्ध प्राणकृष्ण, ए०आई०आर० 1952 कलकत्ता, 89 3,57, सी०डब्ल्यू०एन० (न्यायाधीशगण जी०एन० दास और गुहा रे)।
2. प्रोभात कुमार विरुद्ध राममोहन, ए०आई०आर० 1958 कलकत्ता 177, 178, पैरा 9 (मलिक, जे)।
3. हरेन्द्र विरुद्ध जनानेन्द्र (1952) 90 कलकत्ता ला जरनल, 147, जो गदाधर विरुद्ध जानकी नाथ (1968) 72, सी०डब्ल्यू०एन० 299 में निर्दिष्ट है।
4. गदाधर विरुद्ध जानकीनाथ, ए०आई०आर० 1969, कलकत्ता 59, 63, 65 पैरा 32।
5. सुब्बामा विरुद्ध बीराय्या, ए०आई०आर० 1932, मद्रास, 15,17।
6. नृत्य गोपाल विरुद्ध प्राणकृष्ण, ए०आई०आर० 1952, कलकत्ता 393, 57 सी डब्ल्यू०एन० 429 (न्यायाधीश एस० एन० दास और गुहा रे)।
7. डा० राश बिहारी घोष : विभाजन विधेयक के पुरःस्थापन के संबंध में दिया गया भाषण, फोर्ट सेण्ट जार्ज गज़ट, तारीख 12 अप्रैल, 1892।

निदेश देने की शक्ति नहीं थी। यह बतलाया गया था कि हिन्दू विधि में भी विक्रय की शक्ति अत्यन्त सीमित[1] थी और मुस्लिम विधि[2] में भी स्थिति वैसी ही है।

विभिन्न कारणों से सुधार की आवश्यकता।

5.11. न्यायिक रायों में इस व्यापक भिन्नता[3] से अनिश्चितता उत्पन्न होती है। मुख्यतः, यह इसलिए उत्पन्न हुई है कि सारभूत न्याय करने की आवश्यकता को महसूस किया गया है किन्तु धारा 2 की भाषा अवरोध उत्पन्न करती है, परिणामतः, वे न्यायालय जो भाषा का व्यापक अर्थ नहीं लगाना चाहते, संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाते हैं, जबकि अन्य न्यायालय व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हैं।

धारा 2 की वर्तमान संकीर्ण परिधि अनेक मामलों में कठिनाई उत्पन्न करती है। जहां आधी सम्पत्ति धारण करने वाले व्यक्ति इस धारा के अधीन आवेदन नहीं करते, वहां न्यायालय उस मामले में विवश हो जाते हैं। इस विवशता ने, कुछ उच्च न्यायालयों को अधिनियम की व्याप्ति के बाहर विक्रय का आदेश देने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए बाध्य किया है जब कि अन्य उच्च न्यायालय स्वयं को अधिनियम के उपबंधों से आबद्ध मानते हैं।

यथार्थ स्थिति।

5.12. अब हम कुछ यथार्थ स्थितियों का अध्ययन करेंगे। धारा 2 से बाहय स्थिति निम्नलिखित मामलों में उद्भूत होगी—

(i) जहां पक्षकार विभाजन के लिए वाद करते हैं, किन्तु अलसता के कारण विक्रय के लिए आवेदन नहीं करते,

(ii) जहां पक्षकार विभाजन के लिए वाद करते हैं किन्तु यह अनुरोध करते हैं कि विक्रय केवल सह-अंशधारियों के बीच किया जाय[4],

(iii) जहां न्यायालय का यह विश्वास हो जाता है कि सम्पत्ति का विभाजन सुविधापूर्वक और साम्यापूर्ण ढंग से नहीं किया जा सकता, किन्तु पक्षकार विक्रय के लिये आवेदन न करके गत्यारोध उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार विभाजन की प्रक्रिया को धीमी कर देते हैं।[5]

(iv) जहां पक्षकारों में से कुछ पक्षकार विक्रय की वांछा करते हैं, किन्तु उनकी संख्या सम्पत्ति के अपेक्षित आधे भाग का प्रतिनिधित्व करने वाली नहीं होती।

इन सभी स्थितियों में, यदि संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाता है तो कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

अंग्रेजी एक्ट।

5.13. यह उल्लेख किया जा सकता है कि इंग्लैंड में 1868 के एक्ट के तत्स्थानी उपबन्ध व्यापक थे क्योंकि उस एक्ट की धारा 4 (जो भारतीय अधिनियम की धारा 2 के समान है) के अलावा, उस एक्ट की धारा 3 तथा 5 में दो अन्य मामलों की चर्चा की गई थी जिनके अधीन विभाजन का आदेश दिया जा सकता था।[6] किसी हितबद्ध पक्षकार का अनुरोध उन धाराओं के लागू होने के लिए पर्याप्त था, और यह आवश्यक नहीं था कि आधा भाग धारण करने वाले पक्षकार आवेदन करें[6]।

इतिहास—धारा 2 की वर्तमान संकीर्ण व्याप्ति के लिए कारण।

5.14. धारा 2 की वर्तमान संकीर्ण परिधि का कारण जानने के लिए हमने एक्ट के इतिहास का विश्लेषण किया है। यह प्रतीत होता है कि यह संकीर्ण परिधि अधिनियम के रचनाकारों ने निम्नलिखित कारणों से प्रस्तावित की थी[7]—

> "किन्तु इस देश के लोगों के अपनी भूमि सम्पत्ति से गहरे लगाव का ध्यान रखते हुए, यह प्रस्तावित है कि सम्पत्ति के कम से कम आधे हिस्से में हितबद्ध पक्षकारों की सम्पत्ति को न्यायालय द्वारा इस शक्ति के प्रयोग के लिए पुरोभाव्य शर्त बनाया जाय।"

---

1. बृहस्पति पाठ, डाइजेस्ट 7,366।
2. हेडाया, बुक 38, अध्याय 3, उद्धृत।
3. ऊपर के पैरा 5.5 से 5.10।
4. रामप्रसाद विरुद्ध मुकुन्दी, ए०आई०आर० 1929 एलाहाबाद 443 से तुलना कीजिए।
5. श्री रामप्रसाद विरूद्ध सुब्रामैण्य, ए० आई० आर० 1958, ए० पी० 647, 651 पैरा 22.।
6. परिशिष्ट 1 देखिए।
7. उद्देश्यों एवं कारणों का विवरण, विधेयक क्रमांक 8 सन् 1892, गजट ऑफ इण्डिया, 1892, भाग 5, पृ० 46।

5.15. इस तर्क में कोई संदेह नहीं है[1]। किन्तु अधिनियम के व्यावहारिक कार्यकरण से गंभीर कठिनाइयां सामने आई हैं जो उसके उपबन्धों के यथावत् प्रयोग से उत्पन्न होती हैं। सम्पत्ति के आधे हिस्से में हितबद्ध पक्षकारों का आलस या उदासीनता (या उनके बीच करार का अभाव) मामले को अधिनियम की व्याप्ति से बाहर ले जाने और जैसा ऊपर बतलाया गया है, न्यायालय को विवश करने के लिए पर्याप्त हैं। अतः इस संबंध में धारा 2 की व्याप्ति बढ़ाने के लिए पर्याप्त औचित्य है। व्यावहारिक कार्यकरण से प्रकट हुई कठिनाइयां।

5.16. धारा 2 के अधीन होने वाली कठिनाई[2], जिसकी चर्चा ऊपर की गई है, के कारण विधि को संशोधित करना आवश्यक है। हमारी राय में, भारत में निर्णीत विभिन्न मामलों[3] में उत्पन्न स्थिति[4] को ध्यान में रखते हुए, यह वांछनीय है कि इस उपबन्ध को इतना व्यापक रखना चाहिए कि जिससे न्यायालय स्वप्रेरणा से कार्य कर सकें। विद्यमान धारा में, ऐसी स्थिति तब तक समाविष्ट[5] नहीं होगी जब तक कि उसकी भाषा को असम्यक् रूप से खींचा न जाय। पक्षकार कभी-कभी यह स्थिति स्वीकार नहीं करते कि विभाजन असंभव है या बहुत असुविधापूर्ण है, और वे केवल माप और सीमांकन द्वारा विभाजन के लिए प्रार्थना करते हैं, किन्तु न्यायालय को संयुक्त सम्पत्ति को पृथक्-पृथक् विनिर्दिष्ट हिस्सों में[6] विभाजित करना कठिन प्रतीत होता है। तब न्यायालय विवश हो जाता है। निश्चित ही इस स्थिति का अन्त किया जाना चाहिए। अतः उचित मार्ग यही होगा कि न्यायालय को ऊपर बताई गई शक्ति दी जाय। धारा 2—संशोधन की आवश्यकता।

5.17. इस सन्दर्भ में हमारी सिफारिश दो प्रकार की है—

(एक) प्रथमतः, किसी भी हिस्साधारक को उस दशा में जब कि अन्य शर्तें पूरी हो जाती हैं, विक्रय की मांग करने का अधिकार होना चाहिए। विधि (जैसी कि स्थिति वर्तमान में है) सम्पत्ति के कम से कम आधे हिस्से के हिस्साधारकों के द्वारा आवेदन किया जाने पर जोर नहीं देना चाहिए। निःसन्देह, अन्य धारा में दी गई अन्य शर्तों की पूर्ति अवश्य होनी चाहिए। एक बार यह स्थापित हो जाने पर, किसी भी हिस्साधारक को विक्रय की मांग करने का अधिकार होना चाहिए। धारा 2 की व्याप्ति को व्यापक बनाने की सिफारिश।

(दो) द्वितीयतः, किसी विभाजन वाद में न्यायालय को स्वप्रेरणा से सम्पत्ति के विक्रय का आदेश देने का विवेकाधिकार उस स्थिति में दिया जाना चाहिए जब सम्पत्ति की प्रकृति के कारण या धारा में वर्णित अन्य बातों के कारण विभाजन सुविधाजनक नहीं होगा और विक्रय अधिक फायदाप्रद होगा। तथापि, न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से पारित किए गए ऐसे आदेश[6] के लिए कारण अवश्य अभिलिखित किए जाने चाहिए।

5.18. धारा 2 द्वारा जो गंभीर समस्या उत्पन्न होती है उसके लिए इसके द्वारा सावधानी बरती गई है। हम देखते हैं कि वाद में की सम्पूर्ण सम्पत्ति के विभाजन और तत्पश्चात् कुछ पक्षकारों को उसके भाग के आबंटन और उस भाग के व्ययन को धारा 2 या धारा 9 द्वारा प्राधिकृत[7] नहीं किया गया है। इस विषय पर अधिनियम की संकीर्ण व्याप्ति का कारण स्पष्ट है। यदि पूरी सम्पत्ति नहीं बेची जाती और मकान का एक भाग या किसी भूमि का केवल एक भाग बेचा जाता है, तो बेचे जाने वाले भाग की उचित कीमत नहीं मिलेगी, और इससे उन अंशधारियों को, जिनके हिस्से में वह सैद्धांतिक रूप से आती है, कठिनाई होगी। यह धारा उस प्रत्येक मामले में आकृष्ट होती है जिसमें सभी अंशधारियों के बीच सम्पत्ति का विभाजन युक्तियुक्त रूप से और सुविधापूर्वक नहीं किया जा सकता। अन्यथा, बहुत से मामलों में इस धारा की प्रयोज्यता समाप्त हो जायगी क्योंकि अंशधारियों[8] में से एक अंशधारी को सम्पत्ति या उसका अंश आबंटित करना सदैव संभव होगा। धारा 2 और विक्रय का ढंग।

---

1. ऊपर का पैरा 5.14।
2. ऊपर का पैरा 5.15 देखिए।
3. ऊपर के पैरा 5.6 से 5.10 तक देखिए।
4. रामप्रसाद राव विरुद्ध सुब्रामैय्या, ए०आई०आर०, 1958, ए०पी० 647 से तुलना कीजिए।
5. प्रशांत कुमार विरुद्ध राममोहन, ए०आई०आर० 1958 कलकत्ता, 177 पैरा 6।
6. सुझाए गए पुनः प्रारूपण के लिए नीचे का पैरा 5.20 देखिए।
7. जदुनाथ विरुद्ध हरचन्द्र, आई०एल०आर० 49, कलकत्ता, 1043, ए०आई०आर० 1923 कलकत्ता 221।
8. अबदुल्ला हाजी विरुद्ध कुनामिना, ए०आई०आर० 1961 केरल, 201, 202, पैरा 3।

सह-अंशधारियों के बीच विक्रय।

5.19. यहां उस विषय के प्रति निर्देश किया जा सकता है जिसके संबंध में यह धारा मौन है। जहां वादी न्यायालय को यह आवेदन करता है कि विक्रय किया जाय और यह कि जो भी अधिकतम बोली लगाता है उसे मकान (जो विभाजन के योग्य नहीं है) दे दिया जाय, और पक्षकार इस बात पर सहमत हो जाते हैं कि कोई विभाजन नहीं किया जा सकता, वहां न्यायालय, निर्णयज विधि[1-3] के अनुसार वादियों के बीच विक्रय किए जाने और न्यायालय द्वारा नियत किए गए मूल्यांकन से ऊपर अधिकतम बोली लगाने वाले को सम्पत्ति दी जाने का निदेश दे सकता है। तथापि यह धारा शाब्दिक रूप से सह-अंशधारियों[4] के बीच विक्रय किया जाने को प्राधिकृत नहीं करती। हम इस स्थिति से उत्पन्न होने वाली समस्या पर धारा 7 के अधीन उपयुक्त स्थान[5] पर विचार करेंगे।

प्रारंभिक शब्दों का पुनरीक्षण किया जाना।

5.20. हम धारा 2 के प्रारंभिक शब्दों के संबंध में भी हम समीक्षा करना चाहेंगे, जो निम्नानुसार है:—

"जब कभी विभाजन के किसी ऐसे वाद में, जिसमें **यदि वाद इस अधिनियम के पहले संस्थित किया गया होता तो** विभाजन के लिए डिक्री दी जा सकती थी।"

यह शब्दावली उपयुक्त नहीं है। अनुमानतः, इन शब्दों में अन्तर्निहित उद्देश्य यह प्रतीत होता है—विधान-मण्डल केवल उन मामलों के लिए विधान निर्माण कर रहा था जहां विभाजन का अधिकार साधारण विधि के अधीन उपलब्ध है। इस संबंध में यह पूर्वानुमानित है कि कतिपय शर्तों की पूर्ति होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, विवादग्रस्त सम्पत्ति में समवर्ती हित होने चाहिए, और सम्पत्ति, किसी कानूनी या अन्य विधिक प्रतिषेध के कारण अविभाज्य नहीं होनी चाहिए।

अन्य शब्दों में, यदि साधारण विधि द्वारा, विभाजन का दावा करने का अधिकार नहीं है, तो कोई पक्षकार विक्रय के संबंध में अधिनियम के उपबन्धों का अवलंब नहीं ले सकता। यह मुख्य अभिप्राय प्रतीत होता है। किन्तु यह आशय ऐसे शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है जो भ्रामक हैं। पाठक मानसिक रूप से **अधिनियम के पारित होने के पूर्व के युग** में पहुंच जाता है और उसकी यह धारणा बन जाती है—हालांकि वह गलत हो सकती है—कि उससे यह आशा की जाती है कि वह उस विभाजन की उस विधि के बारे में गवेषणा करे जैसी कि वह 1893 में विद्यमान थी। तथापि यह आशय कदापि नहीं हो सकता। मुख्य अभिप्राय यह है कि (जैसा कि ऊपर बताया गया है) कि विभाजन का दावा करने का अधिकार अवश्य होना चाहिए। यह अभिप्राय अधिक अच्छी भाषा में व्यक्त किया जा सकता है और किया भी जाना चाहिए। तदनुसार, हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 2 के प्रश्नगत भाग को यथोचित रूप से संशोधित किया जाय। धारा 2 के पुनःप्रारूपण से जो बाद में[6] दिया गया है, यह पूर्णतः स्पष्ट हो जायगा कि हमारे मस्तिष्क में क्या विचार हैं।

धारा 2 का पुनरीक्षण किया जाना।

5.21. उपरोक्त विवेचना के प्रकाश में, हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 2 को निम्नानुसार पुनरीक्षित किया जाय :—

पुनरीक्षित धारा 2

"2. **विभाजन वादों में विभाजन के बदले विक्रय का आदेश देने की न्यायालय की शक्ति**—जब कभी विभाजन के ऐसे किसी वाद में जिसमें **न्यायालय विभाजन की डिक्री देने का हकदार** है, न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि—

(क) जिस सम्पत्ति से वह संबंधित है उसकी प्रकृति या उसके हिस्साधारकों की संख्या या किन्हीं अन्य विशेष परिस्थिति के कारण उस सम्पत्ति का विभाजन युक्तियुक्त रूप से या सुविधापूर्वक नहीं किया जा सकता है, और

---

1. देवेन्द्र नाथ विरुद्ध हरीदास (1911) 7 आई०सी० 844, जिस पर मोहित कृष्ण विरुद्ध प्रणब चन्द्र, ए०आई०आर० 1930, कलकत्ता 616 में चर्चा की गई है।
2. रामप्रसाद विरुद्ध मुकुन्दी, ए०आई०आर० 1929, इलाहाबाद 443।
3. मोहित कृष्ण विरुद्ध प्रणबचन्द्र, ए०आई०आर०, 1930 कलकत्ता 616,619 (न्यायाधीश एस०के०घोष)।
4. रामगोपाल विरुद्ध भिखारी, ए०आई०आर० 1964, राजस्थान, 229।
5. नीचे का पैरा 8.7 देखिए।
6. नीचे का पैरा 5.21 देखिए।

(ख) सभी हिस्साधारकों के लिए यह अधिक फायदाप्रद होगा कि सम्पत्ति का विक्रय करके आगमों का वितरण कर दिया जाय।

तो न्यायालय,--

"(एक) किसी ऐसे हिस्साधारक के अनुरोध पर उस सम्पत्ति के विक्रय और आगमों के विक्रय और आगमों के वितरण का निदेश देगा,

(दो) उस दशा में भी जब कि ऐसा अनुरोध नहीं किया गया हो ऐसे विक्रय और वितरण का निदेश दे सकेगा यदि वह, लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से ऐसा करना न्याय के हित में ठीक समझता है।"

अध्याय 6

हिस्साधारकों को विक्रय–धारा 3

एक. हिस्सा धारक विक्रय के लिए आवेदन करने के लिए हकदार हैं

धारा 3—कठिनाई का स्रोत ।

6.1. अब हम धारा 3 पर विचार करेंगे जिसे न्यायिक रूप से 'कठिनाई का स्रोत'[1] के रूप में वर्णित किया गया है । धारा 3 (1) द्वारा जो गंभीर विसंगति उत्पन्न हुई है, जिसके बारे में हम विचार[2] करेंगे, इस वर्णन को उचित सिद्ध करती है ।

छोटे हिस्साधारकों का समर्थन करने वाली विसंगति ।

6.2. जिस प्रथम प्रश्न पर विचार किया जाना है वह धारा 3(1) से संबंधित है । धारा 3(1) में, जहां तक कि वह विचार किए जाने वाले प्रश्न से सुसंगत है, यह उपबन्ध किया गया है कि जहां धारा 2 के अधीन न्यायालय से विक्रय का निदेश देने का अनुरोध किया जाता है और ". . . . . **कोई अन्य हिस्साधारक**, विक्रय की मांग करने वाले पक्षकार या पक्षकारों के हिस्से या हिस्सों का आंके गए मूल्य पर क्रय करने की इजाजत के लिए आवेदन करता है, तो न्यायालय––मूल्यांकन का आदेश देगा और ऐसे हिस्साधारक को उसका विक्रय करने की प्रस्थापना करेगा ।"

हिस्साधारकों के अधिकारों के बारे में विवाद ।

6.3. ऐसे हिस्साधारकों के, जिनने धारा 2 के अधीन आवेदन किया है, अधिकारों के संबंध में मतभेद है । यह मतभेद शब्द "कोई अन्य हिस्साधारक" के कारण उद्भूत होता है । इस संबंध में धारा 3(1) की व्याप्ति के बारे में दो मत हैं ।

मद्रास[3] और कलकत्ता[4] के मत के अनुसार, धारा 3 उन मामलों तक सीमित है जहां **किसी अन्य हिस्साधारक द्वारा** क्रय करने की इजाजत के लिए आवेदन किया गया है । अतः उसके उपबन्ध उन हिस्साधारकों द्वारा उपयोग में नहीं लाए जा सकते जिनने धारा 2 के अधीन आवेदन किया है, अर्थात् उन हिस्साधारकों द्वारा जो सम्पत्ति में आधे हिस्से का स्वामित्व रखते हैं ।

तथापि, पंजाब उच्च न्यायालय[5] के अनुसार, जिन हिस्साधारकों ने धारा 2 के अधीन आवेदन किया है वे भी धारा 2 के अधीन आवेदन कर सकते हैं ।

विसंगति संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण उत्पन्न हुई है ।

6.4. यह प्रतीत होता है कि संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण विसंगति उत्पन्न होती है क्योंकि उसका प्रभाव व्यावहारिक रूप में बड़े हिस्साधारकों की अपेक्षा छोटे हिस्साधारकों को मान्यता देना है । इस तथ्य को कि कोई व्यक्ति बड़ा हिस्सा धारण करता है, इस दृष्टिकोण के अधीन निर्योग्यता बना दिया जाता है और उसे छोटे हिस्से का स्वामित्व रखने वाले पक्षकार के हिस्से का क्रय करने की प्रस्थापना करने से प्रवारित कर दिया जाता है । जैसा कि मद्रास उच्च न्यायालय[6] द्वारा इस (धारा के अर्थान्वयन पर संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाने के लिये विवश होने पर भी) यह विचार व्यक्त किया कि यदि 'क' 9/10वां और 'ख' 1/10वां भाग का स्वामित्व रखता है तो 'क' निर्योग्यता के अधीन है तथापि, यदि दो व्यक्ति हों और एक को मान्यता दी जानी हो तो 'क' को 'ख' से बेहतर हक होगा ।

कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी (यद्यपि संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुये) यह विचार व्यक्त किया है कि यह महत्वपूर्ण है कि धारा 3 ने बड़े धारक की अपेक्षा छोटे हिस्साधारक को समर्थन किया है । तथापि, यह न्यायालय का काम नहीं था कि वह विधान-मण्डल द्वारा बनाए गए स्पष्ट और असंदिग्ध उपबन्ध की युक्तियुक्तता या अयुक्तियुक्तता पर विचार करे जिसके द्वारा एक विशिष्ट पक्षकार को दूसरे पक्षकार के ऊपर लाभ दिया गया है ।

---

1. सुबम्मा विरुद्ध वीरय्यपा, ए०आई०आर० 1932 मद्रास 15,16 ।
2. नीचे का पैरा 6.2 से 6.7 तक ।
3. अंनामुथु मुदलियार विरुद्ध रत्ना मुदलियार, ए०आई०आर० 1926 मद्रास 1234 ।
4. (क) अतुलचन्द्र विरुद्ध भूषण चंद्र, ए०आई०आर० 1926 कलकत्ता 1190 ।
   (ख) मानिकलाल विरुद्ध पुलिन बिहारी, ए०आई०आर० 1950 कलकत्ता 431, 432, 433 ।
5. सेठ चिरंजीलाल विरुद्ध हरद्वारी लाल (1964) आई०एल०आर० पंजाब 321,328 (न्या० पी०सी० पंडित) ।
6. सुब्बामा विरुद्ध वीरायूया, ए०आई०आर० 1932 मद्रास, 15,16 (न्या० वेंकट सुब्बा) ।

संकीर्ण दृष्टिकोण से उत्पन्न होने वाली कठिनाई के बारे में उदाहरण।

6.5. धारा 3(1) के संकीर्ण अर्थान्वयन से होने वाली कठिनाई को कलकत्ता के एक वास्तविक मामले[1] को लेकर समझाया जा सकता है। 'क' एक तालाब में 14 आना हिस्सा धारण करता है और 'ख' 2 आना हिस्सा धारण करता है। यदि 'क' धारा 2 के अधीन विक्रय के लिये आवेदन करता है तो धारा 3 के अधीन 'ख' 'क' का हिस्सा खरीद सकता है। किन्तु ऐसी कार्यवाहियों में 'क' 'ख' का हिस्सा खरीदने की प्रस्थापना नहीं कर सकता। न्यायालय सम्पत्ति का विक्रय सह-अंशधारियों[2] के बीच किए जाने का भी निदेश नहीं दे सकता इसका परिणाम यह है कि 'क' को, जो यद्यपि वह बहुत बड़ा हिस्सा धारण करता है,—

(क) 'ख' का संयुक्त कब्जा तब तक सहन करना चाहिए (चाहे वह कितना भी असुविधाजनक क्यों न हो) जब तक कि 'ख' विक्रय के लिए आवेदन नहीं करता, या

(ख) धारा 2 के अधीन आवेदन करना चाहिए और सम्पत्ति को अपने हाथ से निकल जाने देना चाहिए क्योंकि, संकीर्ण दृष्टिकोण के अनुसार वह धारा 3 के अधीन आवेदन नहीं कर सकता।

वस्तुतः इसका अर्थ यह है कि सबसे बड़ा अंशधारी अपने हिस्से का शांतिपूर्ण और कारगर उपभोग नहीं कर सकता।

धारा 3 द्वारा उत्पन्न विसंगति।

6.6. जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है[3] धारा 3 में यह एक गंभीर विसंगति है। इस विसंगति को धारा 3(1) को इस प्रकार संशोधित करके दूर किया जाना चाहिए कि जिससे कोई भी अंशधारी इस धारा के अधीन आवेदन कर सके। धारा 3 द्वारा उत्पन्न कठिनाई का उल्लेख कई न्यायिक[4,5] विनिश्चयों में किया गया है। उन विसंगतियों की सम्पूर्ण स्कीम की आलोचना कलकत्ता के मामले[6] में की गई है। हमने इस आलोचना का सम्यक् ध्यान रखा है। हमें आशा है कि हम धारा 3 में जिन परिवर्तनों की सिफारिश[7] कर रहे हैं, वे उन उपबन्धों को, जिनसे गम्भीर विसंगति उत्पन्न होती है, हटाकर सह-अंशधारियों के हितों को अग्रसर करने में सहायक होंगे।

धारा 3(1) के बारे में सिफारिश।

6.7. हम सिफारिश करते हैं कि धारा 3(1) को निम्नानुसार पुनरीक्षित किया जाय—

"(1) यदि, किसी ऐसे मामले में जिसमें न्यायालय धारा 2 के अधीन विक्रय का निदेश देता है, कोई हिस्साधारक अन्य पक्षकार या पक्षकारों के हिस्से या हिस्सों का आंके गए मूल्य पर क्रय करने की इजाजत के लिए आवेदन करता है तो न्यायालय ऐसी रीति से उस हिस्से या हिस्सों के मूल्यांकन का आदेश दे सकेगा जैसा वह ठीक समझे, और ऐसे हिस्साधारक को इस प्रकार अभिनिश्चित कीमत पर उस हिस्से का विक्रय करने की प्रस्थापना कर सकेगा और उस निमित्त सभी आवश्यक और उचित निदेश दे सकेगा, **और जहां ऐसे आवेदन विभिन्न या विरोधी पक्षकारों के हिस्सों के संबंध में किए जाते हैं तो न्यायालय इस धारा के अधीन उन हिस्सों में से ऐसे हिस्से के संबंध में आदेश कर सकेगा जिसे वह न्यायोचित समझे।"**

दो. सम्पत्ति का विक्रय

सम्पत्ति का विक्रय।

6.8. इस बात का भी उपबन्ध किया जाना चाहिए कि यदि, किसी ऐसे मामले में जिसमें न्यायालय धारा 2 के अधीन विक्रय का निदेश देता है, कोई हिस्साधारक उस **सम्पत्ति को,** जिससे वाद संबंधित है, आंके गए मूल्य पर क्रय करने की इजाजत के लिए आवेदन करता है, तो न्यायालय ऐसी रीति से उस सम्पत्ति का मूल्यांकन करने का आदेश दे सकेगा जैसा वह ठीक समझे, और ऐसे हिस्साधारक को इस प्रकार अभिनिश्चित कीमत पर उस सम्पत्ति का विक्रय करने की प्रस्थापना कर सकेगा, और उस निमित्त

---

1. मानिकलाल विरुद्ध पुलिन बिहारी, ए०आई०आर० 1950 कलकत्ता, 431 पैरा 8 और 433, पैरा 13 (न्या० आर० पी० मुकर्जी)।
2. अतुलचन्द्र विरुद्ध भूसनचन्द्र, ए०आई०आर० 1926 कलकत्ता 1190
3. ऊपर का पैरा 6.4।
4. मूल वाद क्रमांक 750/1919 (मद्रास) जो सुब्बम्मा विरुद्ध वीरय्या ए०आई०आर० 1932, मद्रास 15,16 में निर्देशित है।
5. रामप्रसाद विरुद्ध मुकन्दी, ए०आई०आर०, 1929, एलाहाबाद, 443।
6. नितीश चन्द्र विरुद्ध प्रमोद कुमार, ए०आई०आर० 1953, कलकत्ता, 15, 20 पैरा 22, (डी० बी०)।
7. नीचे देखिए (न्या० आर० पी० मुकर्जी)।

सभी आवश्यक और उचित निदेश दे सकेगा। धारा 3 में इस विषय पर एक नई उपधारा (1क) निम्नानुसार अन्तःस्थापित की जाय :

"3. (1क) यदि, किसी ऐसे मामले में जिसमें न्यायालय धारा 2 के अधीन विक्रय का निदेश देता है, कोई हिस्साधारक उस सम्पत्ति को, जिससे वाद संबंधित है, आंके गए मूल्य पर क्रय करने की इजाजत के लिए आवेदन करता है तो न्यायालय ऐसी रीति से उस सम्पत्ति का मूल्यांकन करने का आदेश दे सकेगा जैसा वह ठीक समझे, और ऐसे हिस्साधारक को इस प्रकार अभिनिश्चित कीमत पर उसका विक्रय करने की प्रस्थापना कर सकेगा, और उस निमित्त सभी आवश्यक और उचित निदेश दे सकेगा।"

तीन. विक्रय के लिए आवेदन के लिए समय सीमा

धारा 3 और आवेदन करने के लिए समय का प्रश्न।

6.9. अब हम एक अन्य बिन्दु पर भी विचार करेंगे जो धारा 3(1) से उत्पन्न होता है। उन हिस्साधारकों के, जिन्होंने धारा 2 के अधीन आवेदन किया था, हिस्सों का क्रय करने के किसी पक्षकार के अधिकार का प्रयोग विशिष्ट समय के भीतर किया जाना चाहिए। धारा 3(1) यह उपबन्ध करती है कि यदि, किसी ऐसे मामले में जिसमें न्यायालय से विक्रय का निदेश देने का अनुरोध किया जाता है, कोई अन्य हिस्साधारक क्रय करने की इजाजत के लिए आवेदन करता है, तो न्यायालय हिस्सों के मूल्यांकन का आदेश देगा और उसके विक्रय की प्रस्थापना करेगा। उस निश्चित समय बिन्दु के बारे में विवाद है जिस पर धारा 3(1) के अधीन आवेदन किया जाना चाहिए। क्या आवेदन विक्रय का आदेश दिया जाने के पूर्व किया जाना चाहिए अथवा वह वस्तुतः विक्रय किया जाने के पूर्व किया जाना चाहिए? इस प्रश्न पर विनिश्चयों में भिन्नता है।

मत की भिन्नता।

6.10. संकीर्ण दृष्टिकोण के अनुसार, (जो पूर्व कथित मद्रास के मामले में निरूपित किया गया है)[1] आवेदन धारा 2 के अधीन विक्रय का निदेश दिया जाने के पूर्व किया जाना चाहिए, एक बार पक्षकारों के बीच धारा 2 के अधीन विक्रय का अंतिम आदेश कर दिया जाने पर, धारा 3 के अधीन कोई आदेश नहीं किया जा सकता।

इसके विपरित मत के अनुसार, ऐसा आवेदन धारा 2 के अधीन वस्तुतः विक्रय किये जाने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है।

व्यापक दृष्टिकोण—
(एक) बम्बई[2]
(दो) कलकत्ता[3]
(तीन) मद्रास (पश्चात्कथित मामला)[4] और
(चार) पंजाब[5]
के मामले में किया गया है।

बम्बई का दृष्टिकोण।

6.11. बम्बई के मामले में लिए गए दृष्टिकोण[6] के अनुसार, उदाहरणार्थ धारा 3 के अधीन आवेदन करने के लिए आरम्भ बिन्दु धारा 2 के अधीन विक्रय का निदेश देने के लिए न्यायालय से अनुरोध करने वाले आवेदन के किए जाने के पश्चात् उत्पन्न होता है। विक्रय की पुष्टि समय का वह अंतिम बिन्दु होगा जिसके पूर्व धारा 3 के अधीन आवेदन किया जा सकता है। तथापि, धारा 3 के अधीन अनुरोध को मंजूर करने में न्यायालय को सावधान रहना चाहिए क्योंकि एक बार विक्रय का आदेश कर दिया जाने पर, साम्याधिकार तृतीय पक्षकार के पक्ष में उद्भूत होते हैं।

---

1. अंतामुथ्थू विरुद्ध रत्ना, ए०आई०आर० 48, मद्रास 920, ए०आई०आर० 1925 मद्रास 1284 (कुमार स्वामी शास्त्री और सी० कृष्णन, न्यायाधीशगण)।
2. तोहरभाई अब्दुलअली विरुद्ध नगीनदास, ए०आई०आर० 1979 बम्बई, 41 (फर०)।
3. (क) नितीशचन्द्र विरुद्ध प्रमोद कुमार, ए०आई०आर० 1953, कलकत्ता, 18,19,20 पैरा 12 तथा 19-22।
(ख) मानिकलाल विरुद्ध पुलिन बिहारी, ए०आई०आर० 1950, कलकत्ता, 431।
4. जयाराम चेट्टियार विरुद्ध अन्नमलाई चेट्टियार (1966) आई०एल०आर० 2 मद्रास, 530।
5. सेठ चिरंजीलाल विरुद्ध हरद्वारीलाल (1964) आई०एल०आर० पंजाब 321 (पी० सी० पंडित न्या०)।
6. तोहरभाई अब्दुल अली विरुद्ध नगीनदास गोकुलदास सर्राफ, ए०आई०आर० 1979 बम्बई, 41,53, पैरा 12 (फरवरी)।

कलकत्ता के मामले में[1] यह भी उल्लिखित किया गया है कि धारा 3 में कोई निर्बन्धात्मक शब्द, जैसे "इसके पूर्व कि वह धारा 2 के अधीन आदेश करे" अन्तर्विष्ट नहीं हैं।

व्यावहारिक पहलुओं पर विचार।

6.12. विनिश्चयों की इस भिन्नता को ध्यान में रखते हुए, जिस प्रश्न पर विचार किया जाना है वह है—जिस दिशा में विधि को संशोधित किया जाना चाहिए वह कौनसी है? हमें यह प्रतीत होता है कि व्यावहारिक दृष्टिकोण से व्यापक अर्थान्वयन[1-2] का समावेश करने के लिए बहुत कुछ कहा जा सकता है। मद्रास के पूर्वकथित मामले[3] में, जिसमें संकीर्ण दृष्टिकोण लिया गया है[4], यह कहा गया है कि जब तक कि धाराओं का अर्थान्वयन संकीर्णता से नहीं किया जाता, उन्हें लागू करने में बहुत कठिनाई होगी। क्योंकि विक्रय सार्वजनिक नीलाम द्वारा होगा और सम्पत्ति के लिए कोई भी बोली लगा सकता है "जब तक कि न्यायालय विक्रय को अभिव्यक्त रूप से केवल पक्षकारों तक ही सीमित नहीं रखता।" किन्तु पूरे आदर के साथ यह कहा जा सकता है कि यह समझना कठिन है कि इससे कोई गंभीर कठिनाई क्यों होनी चाहिए। यदि सम्पत्ति के बेचे जाने के पूर्व धारा 3 के अधीन आवेदन किया जाता है, तो स्वाभाविक रूप से विक्रय रोक दिया जायगा। भावी बोली लगाने वालों को कुछ असुविधा हो सकती है किन्तु धारा 3(1) के व्यापक अर्थान्वयन से कोई गंभीर कठिनाई उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं है।

संकीर्ण दृष्टिकोण से होने वाली कठिनाई।

6.13. वास्तव में, संकीर्ण दृष्टिकोण से ही कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। कलकत्ता के पूर्वकथित मामले[5] में कठिनाई का स्पष्टीकरण किया गया है। उस मामले में यह बताया गया था कि यदि वादी प्रतिवादियों या उनमें से कुछ के हक का विरोध करता है, तो जब तक हक संबंधी प्रश्न प्रारंभिक डिक्री में विनिश्चित नहीं कर दिया जाता, प्रतिवादी धारा 3 द्वारा दिए गए अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता भले ही स्वयं वादी ने ही सम्पत्ति के विक्रय का सुझाव क्यों न दिया हो।

धारा 3—समय के बारे में सिफारिश।

6.14. हमने जो ऊपर कहा है उसके प्रकाश में[6], हम व्यापक दृष्टिकोण को समाविष्ट करने की दृष्टि से निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ कर धारा 3 को संशोधित किए जाने की सिफारिश करते हैं :

"स्पष्टीकरण—उपधारा (1) के अधीन या उपधारा (1क) के अधीन आवेदन वस्तुतः विक्रय किया जाने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है।"

चार. धारा 3(2) का पारिणामिक संशोधन

धारा 3(2)—संशोधन के संबंध में सिफारिश।

6.15. धारा 3(1) में प्रस्तावित संशोधन तथा धारा 3(1क) के प्रस्तावित अन्तःस्थापन के परिणामस्वरूप धारा 3(2) में संशोधन आवश्यक है।

अतः हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 3(3) को नीचे बताए गए अनुसार पुनरीक्षित किया जाय—

"(2) यदि दो या अधिक हिस्साधारक उपधारा (1) या उपधारा (1क) के अधीन यथास्थिति उसी हिस्से या उन्हीं हिस्सों का क्रय करने की इजाजत के लिए या सम्पत्ति का क्रय करने की इजाजत के लिए अलग-अलग आवेदन करते हैं तो न्यायालय यथास्थिति उस हिस्से या उन हिस्सों के या सम्पत्ति का विक्रय उस हिस्साधारक को करने का आदेश देगा जो न्यायालय द्वारा किए गए मूल्यांकन से उच्चतम कीमत देने की प्रस्थापना करता है।"

---

1. नितीशचन्द्र विरुद्ध प्रमोदकुमार, ए० आई० आर० 1953, कलकत्ता, 18।
2. ऊपर का पैरा 6.10।
3. अन्नामुथ्यू विरुद्ध रत्ना, आई० एल० आर० 48 मद्रास 920, ए० आई० आर० 1925 मद्रास, 1234, 1235।
4. ऊपर का पैरा 6.9।
5. मानिकलाल विरुद्ध पुलिन बिहारी, ए० आई० आर० 1950 कलकत्ता, 431, 433, पैरा 16 (न्या० आर० पी० मुकर्जी)।
6. ऊपर का पैरा 6.13।

अध्याय 7

निवास गृह का हिस्सा—धारा 4

एक. प्रारंभिक

धारा 4—सिद्धान्त ।

7.1. इस अध्याय में हम अधिनियम की धारा 4 पर विचार करेंगे । इस धारा में, जहां तक कि वह सुसंगत है, यह उपबन्ध है कि जहां अविभक्त कुटुम्ब के किसी निवास गृह का हिस्सा किसी ऐसे व्यक्ति को अंतरित किया गया है जो ऐसे कुटुम्ब का सदस्य नहीं है और ऐसा अंतरिती विभाजन के लिए वाद लाता है वहां यदि कोई ऐसा सदस्य जो हिस्साधारक है, ऐसे अंतरिती के हिस्से का क्रय करने का वचनबंध करता है तो न्यायालय अंतरिती के हिस्से का मूल्यांकन करेगा और ऐसे हिस्से का विक्रय ऐसे हिस्साधारक को करने का निदेश देगा ।

धारा 44—सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम ।

7.2. यह धारा सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 44, द्वितीय पैरा के उपबन्धों की अनुपूर्ति करती है जो निम्नानुसार है[1,2]—

"जहां कि किसी अविभक्त कुटुम्ब के निवास गृह के किसी अंश का अन्तरिती उस कुटुम्ब का सदस्य नहीं है, वहां इस धारा की कोई भी बात उसे उस गृह पर संयुक्त कब्जा रखने का या कोई दूसरा सामान्य या भागिक उपभोग करने का हकदार करने वाली नहीं समझी जायगी ।"

इस अधिनियम की धारा 44 में इस प्रकार का उपबन्ध किया जाने के कारण कि परव्यक्ति संयुक्त कब्जा रखने या कोई दूसरा सामान्यिक या भागिक उपभोग करने का हकदार नहीं है, विभाजन अधिनियम की धारा 4 आगामी उपाय करती है और कुटुम्ब के सदस्यों को बाहरी व्यक्ति का हिस्सा खरीद लेने के लिए समर्थ बनाती है । अतः यह कहा जा सकता है कि धारा 4 विधि को उस बिन्दु से आगे ले जाती है जिस बिन्दु पर वह सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 44 द्वारा छोड़ दी गई है ।

धारा 44 में अन्तर्निहित सिद्धांत ।

7.3. सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 44 के द्वितीय पैरा में अन्तर्निहित सिद्धान्त बम्बई के मामले[3] में मुख्य न्यायाधीश वेस्टोप के निर्णय से ज्ञात किया जा सकता है :

"किसी क्रेता को हिन्दू कुटुम्ब के सदस्यों, जो न केवल उसकी जाति से भिन्न जाति के हो सकते हैं वरन् भिन्न मूलवंश और धर्म के भी हो सकते हैं, के साथ बलपूर्वक संयुक्त कब्जा दिला देने की अपेक्षा हम अधिक सुरक्षित पद्धति यह समझते हैं कि यह बात क्रेता की मर्जी पर छोड़ दी जानी चाहिए कि वह विभाजन के लिए वाद लाए हम समझते हैं कि इससे शांति भंग होने की कम संभावना रहेगी ।"

धारा 4 सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 44 से असंगत है ।

7.4. विभाजन अधिनियम की धारा 4 भी उसी सिद्धान्त पर आधारित है जिस पर सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 44 का औचित्य आधारित है । चूंकि ये दोनों उपबन्ध एक दूसरे के अनुपूरक हैं अतः अनेक न्यायालयों ने एक दूसरे के सन्दर्भ में उनका अर्थान्वयन समरूपता के साथ करने की चेष्टा की है ।[4] तथापि, इस समरूपता के लिए धारा 4 का व्यापक निर्वचन किस सीमा तक किया जा सकता है यह विवाद की विषय वस्तु बन गई है जिसके बारे में हम बाद में उल्लेख करेंगे ।[5]

---

1. धारा 44, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का सं० 4) ।
2. ऊपर का अध्याय 2 भी देखिए ।
3. बाब्जी विरुद्ध गणेश (1881) आई०एल०आर० बाम्बे, 499, 504 (वेस्ट्रोप, मु० न्या०) ।
4. बूतों कृष्णा विरुद्ध अभयकुमार, ए०आई०आर० 1950, कलकत्ता, 111, 113 पैरा 11 (न्यायाधीशगण आर०पी० मुकर्जी और पी०एन० मिश्रा) ।
5. नीचे के पैरा 7.12 से 7.23 देखिए ।

7.5. इसके पूर्व कि हम धारा 4 के संबंध में उत्पन्न होने वाले बिन्दु पर चर्चा करें, हम इस बात का उल्लेख कर सकते हैं कि उसकी सांवैधानिक विधिमान्यता को मद्रास उच्च न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि कुटुम्ब के सदस्य को अंतरिती के हिस्से का क्रय करके उसे बेकब्जा करने के लिए समर्थ बनाना और अंतरिती को उस अधिकार से वंचित करना 'अवैध विभेद' था ।[1]

धारा 4 की सांवैधानिक विधिमान्यता।

इस तर्क को मान्य नहीं किया गया ।

दो. विभिन्न अभिव्यक्तियों के अर्थ

7.6. धारा 4 में प्रयुक्त विभिन्न अभिव्यक्तियां, जैसे 'निवास गृह', 'अविभक्त कुटुम्ब' और 'ऐसे कुटुम्ब का सदस्य' का निर्वचन विभिन्न उच्च न्यायालयों के अनेक विनिश्चयों में किया गया है, और धारा 4 में अन्तर्निहित उद्देश्य अर्थात्—सम्पत्ति के शांतिपूर्ण उपभोग के लिये उपबन्ध करना और एकान्तता सुनिश्चित करना—को दृष्टिगत रखते हुए, सामान्यतः इन अभिव्यक्तियों का व्यापक और उदार अर्थान्वियन किया है ।[2] उदाहरणार्थ, यह ठहराया गया है कि अधिभोग के अस्थायी निलम्बन या सह-अंशधारियों के अभाव के कारण किसी 'निवास गृह' का निवास गृह रहना समाप्त नहीं हो जाता बशर्ते सदस्यों द्वारा उसका पुनःअधिभोग करना संभाव्य हो।[3] सदस्य का निरन्तर निवास आवश्यक नहीं है ।[4]

धारा 4—निवास गृह की परिभाषा।

शब्द 'गृह' का भी इस प्रकार उदार अर्थान्वियन किया गया है कि जिससे अनुलग्न भूमियां या परिसर, जो उसके उचित अधिभोग या उपभोग के लिये आवश्यक हैं, उसके अन्तर्गत हैं ।[5-6]

7.7. शब्द 'अविभक्त' जिस रूप में वह धारा 4 में प्रयुक्त हुआ है, द्वारा जिस अपेक्षा का द्योतन होता है उसके बारे में यह ठहराया गया है कि वह[7-9] संयुक्त हिन्दू परिवार तक या यहां तक कि किसी संयुक्त परिवार तक सीमित नहीं है वरन् वह केवल इस बात का द्योतन करता है कि कोई कुटुम्ब है और उसके सदस्यों ने अपनी सम्पत्ति का बंटवारा नहीं किया है ।[10] गृह के अविभक्त स्वरूप पर जोर दिया गया है ।[11] तदनुसार, ऐसी मुस्लिम विधवा को जो, यद्यपि बहुत पहले पुनर्विवाह कर चुकी थी, दूसरे पति के साथ कुटुम्ब के मकान में रहती रही, धारा 6 के फायदे का हकदार ठहराया गया है ।[12]

विभिन्न अभिव्यक्तियों के संबंध निर्णयज विधि।

इस तथ्य के कारण कि अन्य सभी सम्पत्ति विभाजित की जा चुकी है इस धारा का प्रवर्तन समाप्त नहीं होगा यदि वह कुटुम्ब उस निवास गृह के संबंध में अविभक्त रहता है ।

7.8. पद 'कुटुम्ब' का, जिस रूप में वह धारा 6 में प्रयुक्त हुआ है, इस प्रकार व्यापक निर्वचन किया गया है[13] कि उसके अन्तर्गत हिन्दू बहिनों[14] या मुस्लिम बहिनों[15] के, जो साथ-साथ रहती हैं और यहां तक कि ऐसे दामाद के, जो[16] प्रायः आकर अपने ससुर के साथ ठहरता है, मामले भी आ जाते हैं ।

कुटुम्ब का अर्थ

---

1. कृष्णा पिल्लई विरुद्ध पेरुकुट्टी अम्मल, ए०आई०आर०, 1952 मद्रास 33,34, पैरा 6 (न्या० पन्चापाकेसा अइयर) ।
2. दुलाल चन्द्र विरुद्ध कोस्था बिहारी, ए०आई०आर० 1953 कलकत्ता, 259 (चक्रवर्ती और जी० आर० दास न्यायाधीशगण) ।
3. कालीपद विरुद्ध तुलसीदास, ए०आई०आर० 1960 कलकत्ता 467 ।
4. सुशीला विरुद्ध जे० बी० बराक ए०आई०आर० 1956 उड़ीसा 56 ।
5. नीलकमल विरुद्ध कामाक्ष्या चरण, ए०आई०आर० 1928, कलकत्ता, 539, 542 ।
6. क्षिरोदे चन्द्र विरुद्ध सरोद प्रसाद (1910) 12 कलकत्ता एल० जे० 525, 7 आई०सी० 436 (न्या० मुकर्जी) ।
7. बाबूलाल विरुद्ध हुल्ला नोल्ला, ए०आई०आर० 1938, पटना, 13 ।
8. बाई फातिमा विरुद्ध गुलामनबी; ए०आई०आर० 1936, बम्बई, 197 ।
9. मु० गंगी विरुद्ध आत्मा राम, ए०आई०आर० 1936, लाहौर 291 ।
10. सुल्तान बेगम विरुद्ध देवी प्रसाद (1908) आई०एल०आर० 30 एलाहाबाद, 324 (एफ०बी०) ।
11. बूतो कृष्ण विरुद्ध अभयकुमार, ए०आई०आर० 1950 कलकत्ता, 111 ।
12. शफीयन बेगम विरुद्ध मुकिफयाता ए०आई०आर० 1939 एलाहाबाद 640 (न्या० कोलिस्टर) ।
13. क्षिरोदेचन्द्र विरुद्ध सरोद प्रसाद (1910) 7 आई०सी० 436 (न्या० आशुतोश मुकर्जी) ।
14. कृष्णा पिल्लई विरुद्ध पेरूकुट्टी, ए०आई०आर० 1952, मद्रास 33 ।
15. अले हुसैन विरुद्ध नूरब हुसन, ए०आई०आर० 1958, पटना 232 (मुख्य० न्याया० रामास्वामी और न्या० प्रसाद) ।
16. अहमद खां विरुद्ध एस० हैदर ए०आई०आर० 1971, उड़ीसा, 284 (बी० के० पत्रा और आर० आर० मिश्रा न्यायाधीशगण) ।

किन्डरस्ले वी० सी०[1] द्वारा व्यक्त किए गए मत के अनुसार, शब्द 'कुटुम्ब' स्वयं बहुत लचीले स्वरूप का शब्द है। यह विचार भी व्यक्त किया गया है कि[2] कुटुम्ब प्रचलित अभिव्यक्ति है शास्त्रीय नहीं और उसका अर्थ प्रायः सन्दभ से नियंत्रित होता है।

वस्तुतः, इसके पश्चात् के एक मामले[3] में इस विषय को अधिक व्यापक रूप में प्रस्तुत किया गया था :

"पद 'कुटुम्ब' में उन व्यक्तियों का सामूहिक निकाय समाविष्ट है जो एक साथ एक मकान में या अहाते में रहते हैं। विधिक शली में यह 'कुटुम्ब' का वर्गगत प्रकार है। उसमें माता-पिता या संतान या अन्य नातेदार या घरेलू नौकर से मिलकर बनने वाली गृहस्थी सम्मिलित है। संक्षेप में, ऐसे व्यक्तियों का सामूहिक निकाय कुटुम्ब है जो एक ही अहाते में एक साथ रहते हैं, एक साथ जीवन निर्वाह करते हैं और सामान्य उद्देश्य, आपसी हितों के संप्रवर्तन और सामाजिक सुख का ध्यान रखते हैं। यह इस शब्द का सर्वाधिक लोकमान्य अभिप्राय है।"

कुटुम्ब के बारे में कलकत्ता का मामला।

7.9. इस विषय पर कलकत्ता के मामले में विस्तारपूर्वक विचार किया गया[4] था। न्या० आशुतोश मुकर्जी ने अपना मत संक्षेप में निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया था—

"शब्द 'कुटुम्ब' का, जिस रूप में वह विभाजन अधिनियम में प्रयुक्त हुआ है, उदार और व्यापक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए और उसके अन्तर्गत हैं रक्तोदर नातेदार जो एक ही मकान में या एक ही मुखिया या प्रबन्ध के अधीन रहते हैं।"

इस धारा में अन्तर्निहित सिद्धान्त तथा अंग्रेजी और भारतीय नजीरें सामान्य निवास के बन्धन में बंधे व्यक्तियों के निकाय की अखण्डता को मान्यता देती हैं। पर-व्यक्ति के सूत्रपात के परिणामस्वरूप विघ्न उपस्थित होना अवश्यंभावी है।[5]

एलाहाबाद के एक मामले[6] में, मुख्य न्याया० सर जान स्टेन्ले ने उच्च न्यायालय का निर्णय देते हुए निम्नलिखित विचार व्यक्त किए थे—

"(क) शब्द 'अविभक्त कुटुम्ब', जिस रूप में वे इस धारा में प्रयुक्त हुए हैं, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 44 से लिये गये प्रतीत होते हैं।

(ख) शब्द 'अविभक्त कुटुम्ब' का अर्थ प्रश्नगत निवास गृह के रूप में अविभक्त और ऐसा कुटुम्ब समझा जाना चाहिए जो गृह का स्वामित्व रखता है, किन्तु जिसमें उसका विभाजन नहीं किया है।"

विनिश्चयों का संक्षेप।

7.10. धारा 4 के संबंध में विभिन्न विनिश्चयों के प्रभाव का समुचित संक्षेप कलकत्ता के विनिर्णय में इस प्रकार दिया गया है :[7]

"ये विनिश्चय यह अभिकथित करते हैं कि शब्द "कुटुम्ब" का, जैसा कि वह इस धारा में प्रयुक्त किया गया है, उदार और व्यापक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए और उसके अन्तर्गत है रक्त के आधार पर संबद्ध ऐसे व्यक्तियों का समूह जो एक मकान में एक मुखिया या प्रबन्ध के अधीन रहते हैं, यह कि वह उन व्यक्तियों के निकाय तक ही सीमित नहीं है जो एक ही पूर्वज से अवजनित हों, किन्तु अविभक्त कुटुम्ब गठित करने के लिए सदस्यों के लिए यह आवश्यक नहीं है उन्हे निरन्तर निवास गृह में रहना चाहिए और न ही यह आवश्यक है कि वे एक साथ भोजन करते हो; यह पर्याप्त है यदि कुटुम्ब के सदस्य उस मकान के सन्दर्भ में जिसका स्वामित्व वे रखते हैं, अविभक्त है, यह कि निवास गृह का स्वामित्व ही इस धारा को प्रवर्तित करता है न कि उसका

---

1. ग्रीन विरुद्ध हर्सडन (1853) 646, 651, 61 ई० आर० 598।
2. बर्ट विरुद्ध हेलवर (1872) 14 ई०क्यू० 160।
3. विल्सन विरुद्ध कोकास (1869) 31 टैक्सास, 677-सलीम उल्ला वि० फकीर उल्ला, ए०आई०आर० 1948, एलाहा० बाद 142,143 में उद्धृत।
4. क्षिरोदे चन्द्र विरुद्ध सरोद प्रसाद, 12 सी०एल०जे० 525।
5. सलीम उल्ला विरुद्ध फकीर उल्ला, ए०आई०आर० 1948, एलाहाबाद 142,143।
6. सुलतान बेगम विरुद्ध देवी प्रसाद (1908) आई०एल०आर० 30, एलाहाबाद 324,327,328 (एफ०बी०)।
7. नील कमल विरुद्ध कामाक्षया चरण, ए०आई०आर० 1928 कलकत्ता 539, 541 (न्या० मुकर्जी)।

वास्तविक अधिभोग, और यह कि इस धारा का वास्तविक उद्देश्य कुटुम्ब के किसी सदस्य के अंतरिती को, जो बाहरी व्यक्ति है, उस निवास गृह में, जिसमें उसके कुटुम्ब के अन्य सदस्यों को निवास करने का अधिकार है, बलपूर्वक पहुंचने देने से निवारित करना है।"

धारा 4 का उपयोग केवल पर-व्यक्तियों के संबंध में किया जा सकता है।

7.11. यह उल्लेख किया जा सकता है कि धारा, 4 धारा 2, 3 तथा 6 से मिलकर बनने वाले समूह से पृथक् है। धारा 4 की दशा में, पक्षकारों में से एक पर-व्यक्ति अन्तरिती होना चाहिए। अन्य धाराओं की दशा में पक्षकारों में से एक पर-व्यक्ति हो भी सकता है और नहीं भी।[1]

इन प्रारंभिक टिप्पणियों के साथ, हम उन बिन्दुओं पर विचार करेंगे जो इस धारा के संबंध में उत्पन्न होते हैं।

तीन. पर-व्यक्ति क्रेता के विरुद्ध वाद

धारा 4(1) और अभिव्यक्ति "विभाजन के लिए वाद लाता है"।

7.12. धारा 4(1) के संदर्भ में जिस सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया जाना है वह यह है कि क्या यह धारा उस दशा में आकर्षित होती है जब विभाजन के लिए वाद पर-व्यक्ति-क्रेता द्वारा न लाया जाकर कुटुम्ब के सदस्य द्वारा पर-व्यक्ति-क्रेता के विरुद्ध लाया जाता है। धारा में अभिव्यक्ति "अंतरिती विभाजन के लिए वाद लाता है" प्रयुक्त हुई है जो यदि उसका शाब्दिक अर्थ लगाया जाय, उन मामलों तक सीमित होगी जहां विभाजन वाद में पर-व्यक्ति-क्रेता वादी हो। इस धारा के समुचित अर्थान्वियन के बारे में मतभेद उत्पन्न हुआ है। जहां एक और अनेक उच्च न्यायालयों ने इस धारा का ऐसा व्यापक अर्थान्वियन किया है कि वह उन मामलों तक विस्तारित होती है जिनमें पर-व्यक्ति-क्रेता विभाजन वादों में प्रतिवादी होता है[2] अन्य विनिश्चयों में इसके विपरीत मत व्यक्त किया गया है। सन् 1955 में यह विवाद काफी उग्र था जबकि कलकत्ता उच्च न्यायालय को तद्विषयक मामलों का पुनर्विलोकन करने का अवसर मिला था।[3] बाद के विनिश्चयों में यह विवाद और भी घनीभूत हो गया है। इस प्रश्न पर परस्पर विरोधी विनिश्चयों पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक है।

दृष्टान्त के रूप में तीन उच्च न्यायालयों के मतों का उल्लेख।

7.13. हम, सम्यक् अनुक्रम में सभी महत्वपूर्ण विनिर्णयों का विश्लेषण करेंगे।[4] तथापि, मतभेद की प्रकृति को समझाने की दृष्टि से, इस प्रक्रम पर हम तीन उच्च न्यायालयों के मत का उल्लेख करेंगे।

(एक) बम्बई उच्च न्यायालय के दो निर्णयों[5]-[6] में संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुये यह ठहराया गया है कि धारा 4 केवल उस दशा में लागू होती है जब कि विभाजन या पृथक् कब्जे का दावा करने वाला अंतरिती वादी हो।

(दो) एलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ का निर्णय[7], जिसमें बम्बई उच्च न्यायालय के मत का अनुगमन किया गया है, यह उपदर्शित करता है कि न्यायालय धारा 4 के फायदे को ऐसे मामले तक विस्तारित करने के लिए तैयार है जिसमें अन्तरिती, भले ही वह वादी न हो, विभाजन के लिए दावा करता है।

(तीन) कलकत्ता उच्च न्यायालय[8] ने व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हुए यह ठहराया है कि अंतरिती-प्रतिवादी के लिए यह भी आवश्यक नहीं है कि उसने विभाजन के लिए दावा किया हो।

धारा 4(1) के तीन निर्वचन।

7.14. इस प्रकार धारा 4(1) के तीन निर्वचन प्रचलित प्रतीत होते हैं[9]—

(एक) यह धारा केवल उस दशा में लागू होती है जब अंतरिती वादी है और विभाजन के लिए वाद लाता है। यह संकीर्ण दृष्टिकोण है।

(दो) यह धारा दोनों दशाओं में लागू होती है, अर्थात् या तो जब अंतरिती विभाजन के लिए वाद लाता है या जब कोई सदस्य विभाजन के लिए वाद लाता है और अंतरिती अपने हिस्से के आबंटन के लिए दावा करता है। यह मध्यम दृष्टिकोण है।

---

1. सुब्बम्मा विरुद्ध वीरय्या, ए०आई०आर० 1932 मद्रास 15-16।
2. नीचे का पैरा 7.16।
3. हरघोने हालदार विरुद्ध उषा चरण ए०आई०आर० 1955 कलकत्ता 292,294 पैरा 11 और 12।
4. नीचे का पैरा 7.18।
5. बलशेत विरुद्ध किरन साहेब (1899) आई०एल०आर० 23 बम्बई 121।
6. खण्डेराव विरुद्ध बालकृष्ण, ए०आई०आर० 1922, बम्बई, 121।
7. सखावत अली विरुद्ध अली हुसैन ए०आई०आर० 1957, एलाहाबाद 356,358, पैरा 12 (एफ०बी०)।
8. हरघोने विरुद्ध उषाचरण, ए०आई०आर० 1955 कलकत्ता, 292 (रिव्यू केसेस)।
9. निर्णयज विधि के विश्लेषण के लिए नीचे का पैरा 7.18 देखिए।

(तीन) यह धारा उस दशा में भी लागू होती है जब अंतरिती प्रतिवादी हो चाहे वह अपने हिस्से के आबंटन के लिए आवेदन करता हो या नहीं। यह व्यापक दृष्टिकोण है।

प्रथम दृष्टिकोण— संकीर्ण दृष्टिकोण है।

7.15. प्रथम दृष्टिकोण[1] धारा की भाषा पर, जिसका निर्वचन कठोरता से किया गया है, आधारित है। इस विषय पर बम्बई के विनिश्चय[2] इस दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

द्वितीय दृष्टिकोण— प्रत्येक पक्षकार वादी है।

7.16. द्वितीय[3] दृष्टिकोण इस सिद्धान्त पर आधारित है कि विभाजन वाद में प्रत्येक पक्षकार वादी और साथ ही प्रतिवादी भी है, और यह दोहरी हैसियत विभाजन कार्यवाहियों की प्रकृति से उत्पन्न होती है, जिनमें प्रत्येक पक्षकार विभाजन या पृथक् आबंटन के लिए हकदार होता है। इस निर्वचन के समर्थन में यह भी कहा गया है कि वह कानून के उद्देश्य को, अर्थात्—निवास गृह में पर-व्यक्ति की घुसपैठ का निवारण करना संप्रवर्तित करता है।[4-7]

एलाहाबाद के एक मामले में[8] यह ठहराया गया था कि यदि प्रतिवादी-अंतरिती ने विभाजन वाद में निवास गृह में हिस्से का दावा किया हो तो उसे धारा 4 के अधीन 'वादी' माना जा सकता है। पश्चात्-वर्ती एक पूर्ण न्यायपीठ मामले में भी[9] ऐसी ही स्थिति थी। तथापि, उस मामले में पर-व्यक्ति-क्रेता द्वारा ऐसी प्रार्थना नहीं की गई थी।

मद्रास उच्च न्यायालय ने एक पूर्व के मामले में[10] यह राय व्यक्त की थी कि धारा 4 उस दशा में लागू नहीं होती जब अंतरिती प्रतिवादी हो और विशिष्टतः उस स्थिति में जब उसने विनिर्दिष्ट आबंटन के लिये कोई आवेदन न किया हो। तथापि, इसके पश्चात् उस न्यायालय ने इस धारा को उस मामले में, जिसमें अंतरिती (प्रतिवादी होते हुये भी) विभाजन का दावा करता है, लागू करते हुये, भिन्न मत व्यक्त किया[11]। यह द्वितीय और मध्यवर्ती दृष्टिकोण है।

तीसरा दृष्टिकोण— सर्वाधिक व्यापक।

7.17. तृतीय और सबसे अधिक व्यापक दृष्टिकोण कलकत्ता के मामले[12] में अपनाया गया है। उच्च न्यायालय ने न केवल यह ठहराया कि यह धारा उन दशाओं में भी लागू होती है जिसमें अंतरिती प्रतिवादी हो वरन् यह विचार भी व्यक्त किया कि इस अतिरिक्त घटक, अर्थात् प्रतिवादी अंतरिती ने (विनिर्दिष्ट हिस्से के) आबंटन के लिए आवेदन किया था, के होने या न होने से कोई वास्तविक अन्तर नहीं पड़ता। न्यायालय की राय में, कतिपय उन विनिश्चयों, जिनमें व्यापक दृष्टिकोण अपनाया गया था, के पीछे मूल कारण यह था कि शब्द 'वाद लाना' न केवल 'अभियोजन करने' का द्योतन करता है वरन् 'प्रतिवाद करने' का भी द्योतन करता है—विशेषतः विभाजन वाद की विशिष्ट प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए।

मामलों का विश्लेषण।

7.18. इस विषय पर मामलों के निम्नलिखित विश्लेषण से एक नजर में स्थिति का जायजा मिल सकता है—

(1) सखावत अली विरुद्ध अली हुसैन, ए० आई० आर० 1957, एलाहाबाद 356, पैरा 13 (संकीर्ण दृष्टिकोण) (उक्तियों में मध्यवर्ती दृष्टिकोण का समर्थन किया गया है) (इस मामले का विवेचन रामास्वामी विरुद्ध सुबम्मा, ए०आई०आर० 1967, मद्रास 158, 162 में देखिए)।

---

1. ऊपर का पैरा 14(1)।
2. ऊपर का पैरा 7.13।
3. ऊपर का पैरा 7.14 (दो)।
4. शिवधर विरुद्ध किशुन प्रसाद, ए०आई०आर० 1941 पटना 4।
5. अबु इसा ठाकुर विरुद्ध दीनबंधु (1948) आई०एल०आर० कलकत्ता 248, ए०आई०आर० 1947 कलकत्ता, 426 (न्या० दास)।
6. सत्यभामा विरुद्ध जतीन्द्र, ए०आई०आर० 1929 कलकत्ता 269।
7. लक्ष्मन विरुद्ध मु० लहाना बाई (1937) आई०एल०आर० नागपुर 78, ए०आई०आर० 1937 नागपुर 4।
8. रमजान बक्श विरुद्ध निजामुद्दीन, ए०आई०आर० 1956, एलाहाबाद, 687।
9. सखावत अली विरुद्ध अली हुसेन, ए०आई०आर० 1957, एलाहाबाद 356,358 पैरा 12 (एफ०बी०), ऊपर का पैरा 7.11 देखिए।
10. बुटची रमैया विरुद्ध वेंकट सुब्बाराव, ए०आई०आर० 1950 मद्रास 214।
11. रामास्वामी विरुद्ध सुब्रामनिया, ए०आई०आर० 1967 मद्रास 156,158, 160, पैरा 6,16।
12. हरधोने हालदार विरुद्ध उषा चरण करमरकर, ए०आई०आर० 1955 कलकत्ता 292, 294।

(2) **खण्डेराव विरुद्ध बालकृष्ण**, ए०आई०आर० 1922 बम्बई, 121 (संकीर्ण दृष्टिकोण)

(3) **सत्यभामा विरुद्ध जतीन्द्र मोहन**, ए०आई०आर० 1929 कलकत्ता 269, 271 (सुहरावर्दी और जैक, न्यायाधीशगण) (मध्यवर्ती और व्यापक दृष्टिकोण) इस मामले का विवेचन अलेख विरुद्ध जगबन्धु, ए०आई०आर० 1971, उड़ीसा 127,131 पैरा 8 में देखिए)

(4) **हरघोने विरुद्ध ऊषा चरण करमरकर**, आई०आर० 1955 कलकत्ता, 292,294 पैरा 13 (न्या० पी० ए० मुकर्जी) (व्यापक दृष्टिकोण)

(5) **सुलेम रसूल विरुद्ध मु० दुल्हनबाई, बेवा-सरदार खान द्वारा वारिस रसूल खान और अन्य** आदेश क्रमांक 3/1978 उच्च न्यायालय द्वारा 30-8-1979/17-10-1979 को विनिश्चय किया गया (गुजरात उच्च न्यायालय) (व्यापक दृष्टिकोण)

(6) **बी० रमैया विरुद्ध वेंकट सुब्बाराव**, ए०आई०आर० 1950 मद्रास, 214 (संकीर्ण दृष्टिकोण)

(7) **रामास्वामी विरुद्ध सुब्रामनिया**, ए०आई०आर० 1967 मद्रास, 156,158,160,162, पैरा 6 और 16 (न्या० नटेसन) (मध्यवर्ती दृष्टिकोण)

(8) **लक्ष्मण विरुद्ध मु० लहना बाई**, ए०आई०आर० 1937 नागपुर, 46 (मुख्य न्या० स्टोन) (मध्यवर्ती दृष्टिकोण)

(9) **अलेख विरुद्ध जगबन्धु**, ए०आई०आर० 1971 उड़ीसा, 127,130 (के० मिश्रा और बी० के० पलरा न्यायाधीशगण) (व्यापक दृष्टिकोण) तेजपाल विरुद्ध पूर्णिमा बाई, ए० आई०आर० 1976 उड़ीसा, 62 में इसका अनुसरण किया गया ।

(10) **एच० एन० मुकर्जी विरुद्ध श्यामसुन्दर**, ए० आई० आर० 1973, पटना, 142,144 (व्यापक दृष्टिकोण)

धारा 4 के व्यापक विस्तार का समर्थन ।

7.19. धारा 4 पर निर्णयज विधि का ऊपर उल्लेख किया गया है । इस धारा में अन्तर्निहित उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए, हमें ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता कि उसका विस्तार ऐसी प्रत्येक कार्यवाही पर क्यों नहीं होना चाहिए जिसमें कुटुम्ब के निवास गृह के विभाजन विवाद्य विषय हो भले ही पक्षकार किसी भी रीति में अनुविन्यस्त क्यों न हों और चाहे विनिर्दिष्ट आबंटन के लिए प्रार्थना की गई हो या नहीं । यदि इस विषय पर प्रथम दृष्टिकोण (जो संकीर्णतम दृष्टिकोण है) अपनाया जाता है तो इसका तात्पर्य यह होगा कि कुटुम्ब के सदस्यों को उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब तक कि अंतरिती विभाजन के लिए वाद नहीं लाता । इसी प्रकार, यदि इस धारा को उन मामलों तक सीमित रखा जाता है जिनमें अंतरिती (भले ही वह प्रतिवादी हो) विनिर्दिष्ट आबंटन के लिए प्रार्थना करता है (द्वितीय दृष्टिकोण) तो उससे भी कुछ कठिनाई होगी क्योंकि उससे वादी विधि के फायदाप्रद उपबन्ध से वंचित हो जाएगा यदि अंतरिती चुपचाप बैठा रहता है और किसी अनुतोष के लिए प्रार्थना नहीं करता है । वास्तव में, कतिपय उन न्यायिक विनिश्चयों में भी जिनमें, यह दृष्टिकोण लागू किया गया है, उस कठिनाई को स्वीकार किया गया है जो ऐसे विनिश्चय [1-3] से कभी-कभी हो सकती है ।

तृतीय और सर्वाधिक व्यापक दृष्टिकोण अपने आप में बहुत सार्थकता रखता है ।

व्यापक दृष्टिकोण अपनाने वाले विधान के लिए औचित्य ।

7.20. यदि धारा 4 के उद्देश्य का सम्यक् ध्यान रखा जाता है, तो संकीर्णतम दृष्टिकोण की अपेक्षा सर्वाधिक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने वाले विधायी सुधार का औचित्य स्वयं स्पष्ट है । धारा 4 की वर्तमान शब्द-योजना, जो संदिग्धार्थी है, द्वारा अधिरोपित निर्बन्धनों के कारण कुछ उच्च न्यायालयों को जो कठिनाइयां महसूस हुई हैं उन्हें देखते हुए, इस धारा को व्यापक बनाने की दृष्टि से संशोधित करने का पर्याप्त औचित्य है । ऐसे संशोधन से न केवल सहअंशधारियों के बीच शांतिपूर्ण उपभोग में मदद मिलेगी वरन् सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 44 में अन्तर्निहित नीति को कार्यान्वित करने में सुगमता होगी और उससे उस उपबन्ध और विभाजन अधिनियम की धारा 4 में सामंजस्य स्थापित हो सकेगा । वह विभाजन वाद की मर्मभूत प्रकृति के अनुरूप भी होगा ।

---

1. बुट्ची रमैया विरुद्ध वेंकट सुब्बा राव, ए०आई०आर० 1950, मद्रास 214 ।
2. ऊपर का पैरा 5.17 भी देखिए ।
3. सखावत अली विरुद्ध अली हुसैन, ए०आई०आर० 1957, इलाहाबाद 356, 359, पैरा 13 (एफ० बी०) ।

शब्दार्थ विज्ञान पर विचार करना आवश्यक नहीं है।

7.21. उपरोक्त विवेचन के प्रकाश में इस विषय के शब्दार्थशास्त्र पर विचार करना या अभिव्यक्ति 'वाद लाना' के यथावत् अर्थ का विवेचन करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता क्योंकि अब हमारा सरोकार वर्तमान उपबन्ध के निर्वचन से न होकर उसके उस स्वरूप से है जो न्यायतः उसे ग्रहण करना चाहिए।

स्पष्टीकरण की आवश्यकता।

7.22. हम जिस संशोधन की सिफारिश कर रहे हैं उसका अभिप्राय कोई सर्वथा नवीन दृष्टिकोण का समावेश करना नहीं है क्योंकि अनेक उच्च न्यायालयों ने वर्तमान धारा के संबंध में भी यही दृष्टिकोण अपनाया है। तथापि, अनेक विनिश्चयों में यह उल्लेख किया गया है कि इस धारा की भाषा उपयुक्त नहीं है[1] और वह सहज ही अनन्य अर्थान्वयन[2] किए जाने योग्य बन जाती है। इन कारणो से, धारा 4 की व्याप्ति के संबंध में स्पष्टीकरण आवश्यक है।

धारा 4(1) के बारे में सिफारिश।

7.23. ऊपर जो कुछ कहा गया है उसे दृष्टिगत रखते हुए, धारा 4(1) को इस प्रकार व्यापक बनाया जाना चाहिए कि जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि चाहे अंतरिती वादी हो या प्रतिवादी, और चाहे अंतरिती विनिर्दिष्ट आबंटन के लिए प्रार्थना करता हो या नहीं, वह लागू होगी बशर्ते कि वाद अंतरिती के विरुद्ध विभाजन वाद हो (प्रायिक स्थिति) या कब्जे के लिए वाद हो (वह स्थिति जो वादी सदस्य के कब्जारहित होने पर उत्पन्न हो सकती है) इस संशोधन से उग्र स्वरूप की उस कठिनाई का निराकरण हो जाएगा जो वर्तमान में प्रायः उत्पन्न हो जाती है, जिसका कि उदाहरण एलाहाबाद[3] के मामले में पाया जाता है जिसका हमने उल्लेख किया है। उस मामले में वादी ने अंतरिती के विरुद्ध कब्जे के लिए या विकल्पतः, विभाजन के लिए वाद प्रस्तुत किया था। यह स्वीकार किया गया था कि वह मकान के 47/48वें हिस्से का स्वामी था और प्रतिवादी क्रमांक 1 से 9 (अंतरिती) केवल 1/48 वें हिस्से (जो कतिपय भूतपूर्व सह-अंशधारियों का हिस्सा था) के स्वामी थे। इस पर भी, इस धारा को लागू नहीं किया जा सका।

धारा 4(1) को पुनरीक्षित करने के लिए सिफारिश।

7.24. हमने जो ऊपर कहा है उसके प्रकाश में, हम सिफारिश करते हैं कि धारा 4(1) को निम्नानुसार पुनरीक्षित किया जाए—

"4(1) जहां—

(क) किसी अविभक्त कुटुम्ब के किसी निवास गृह का हिस्सा किसी ऐसे व्यक्ति को अंतरित किया गया है जो ऐसे कुटुम्ब का सदस्य नहीं है, और

(ख) निवास गृह के विभाजन के लिए या निवास गृह के हिस्से के पृथक् कब्जे के लिए वाद संस्थित किया जाता है, और

(ग) अंतरिती चाहे वादी की सिहैयत से या प्रतिवादी की हैसियत से ऐसे वाद का पक्षकार है,

वहां, यदि कुटुम्ब का कोई ऐसा सदस्य, जो हिस्साधारक है, ऐसे अन्तरिती के हिस्से का क्रय करने का वचनबन्ध करता है, न्यायालय ऐसे हिस्से का मूल्यांकन ऐसी रीति से करेगा जैसा वह ठीक समझे और ऐसे हिस्से का विक्रय ऐसे हिस्साधारक को करने का निदेश देगा और उस निमित्त सभी आवश्यक और उचित निदेश देगा।"

चार. किसी अन्य कुटुम्ब में विवाह करने वाली स्त्री सदस्य

धारा 4(1) और किसी अन्य कुटुम्ब में विवाह करने वाली मुस्लिम स्त्रियों के मामले।

7.25. धारा 4(1) से उद्भूत होने वाले एक और प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। इस प्रश्न पर मतभेद है कि क्या किसी अन्य कुटुम्ब में विवाह करने वाली महिला सदस्य (धारा 4 के अर्थ के अन्तर्गत) सदस्य नहीं रह जाती। बम्बई उच्च न्यायालय का मत[4] है कि जब कोई मुसलमान महिला अपने पति के घर में रहने के लिए कुटुम्ब का घर छोड़ देती है तब वह प्रथम दृष्ट्या रूप से घर में रहने का अपना आशय छोड़ देती है, और इसलिए वह धारा 4 के अधीन आवेदन करने की हकदार नहीं है। इसका आधार यह था कि वह व्यक्ति जो अधिभोग रखे हुए था और जिसका आशय अधिभोग रखने का

1. हरधोने हालदार विरुद्ध उषा चरण करमरकर, ए०आई०आर० 1955, कलकत्ता 292,293, पैरा 10 (न्या० एच० एन० मुकर्जी)।

2. बन्छानिदि विरुद्ध बलराम, ए०आई०आर० 1951 उड़ीसा, 180 पैरा 3।

3. सखावत अली विरुद्ध अली हुसैन, ए०आई०आर० 1957, एलाहाबाद 356,357 पैरा 5 (एफ० बी०)।

4. बाई फातिमा विरुद्ध गुलाम नबी, ए०आई०आर० 1936, बम्बई, 197, 199 (न्या० मैकिन)।

नहीं था, धारा 4 के अधीन आवेदन करने के लिये हकदार नहीं है । कोई मुस्लिम स्त्री जो विवाह कर लेती है वह (यह बताया गया) अपने पहले घर में रहने का अपना आशय प्रथम दृष्ट्या रूप से छोड़ देती है ।

किन्तु मद्रास उच्च न्यायालय का मत[1] है कि वह कुटुम्ब की सदस्य रहने से प्रतिविरत नहीं हो जाती । यह निर्णय दो बातों पर आधारित है (एक) मुस्लिम विधि के अधीन विवाह संविदा है और प्रास्थिति बदलने का कोई प्रश्न नहीं उठता, (दो) धारा 4 के अधीन, यह आवश्यक नहीं है कि इजाजत के लिए आवेदन करने वाले सहअंशधारी को कुटुम्ब का सदस्य बना रहना चाहिए । यह पर्याप्त है कि यदि वह विभाजन होने पर हिस्से के लिए हकदार है ।

स्पष्टीकरण की आवश्यकता ।

7.26. उपरोक्त विषय पर विनिश्चयों में होने वाले विरोध को दृष्टिगत रखते हुए, हमारी राय है कि स्थिति का स्पष्टीकरण आवश्यक है । जहां तक अपनाए जाने वाले मार्ग का प्रश्न है, हम इस विषय पर बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की अपेक्षा अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहेंगे । व्यावहारिक रूप से अनेक ऐसी स्थितियां हैं जिनमें विवाहित पुत्री का कौटुम्बिक गृह के प्रति लगाव पुनः पैदा हो सकता है । विवाह-विच्छेद, पृथकत्व और वैधत्व कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण हैं । धारा 4 के बारे में किसी महिला के दावे की केवल इसलिए अवहेलना नहीं की जा सकती कि उसने विवाह कर लिया था और अपने पति के कुटुम्ब के साथ या अपने पति के साथ किसी अन्य स्थान में रहने लगी थी ।

सामाजिक न्याय का यह तकाजा है कि धारा 4 के अधीन उसे वे ही अधिकार होने चाहिए जो किसी अन्य सहअंशधारी को, जिसने विवाह नहीं किया है, होते हैं । बदली हुई सामाजिक दशाओं में, जिनमें स्त्रियों के अधिकारों पर अधिक बल दिया जा रहा है, यह उपगम और अधिक आवश्यक है । अपने वर्तमान स्वरूप में भी, इस धारा का ऐसा अर्थान्वयन किया जा सकता है । तथापि, इस धारा के सही निर्वचन की बारीकियों पर विचार किए बिना, हम उन कारणों से, जिनका हमने पूर्व में उल्लेख किया है, यह सिफारिश करते हैं कि धारा 4 को यथोचित स्पष्टीकरण जोड़ कर संशोधित किया जाए ।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वे स्थितियां, जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है, भारतीय समाज में प्रायः उत्पन्न हो सकती हैं, हमारी राय है कि इस विषय पर विधि को स्पष्ट किया जाए ।

प्रसंगतः, हम इस बात का भी उल्लेख कर सकते हैं कि यद्यपि वह निर्णयज विधि जिसका हमने उल्लेख किया है, मुसलमानों से संबंधित थी, तथापि हिन्दुओं के बारे में या जहां तक उनका संबंध है, किसी अन्य समुदाय के व्यक्तियों के संबंध में भी भिन्न नहीं होगी ।

उपरोक्त के प्रकाश में, हम सिफारिश करते हैं कि धारा 4 के नीचे निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ा जाए :—

धारा 4 में जोड़ा जाने वाला स्पष्टीकरण

"स्पष्टीकरण इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी व्यक्ति का, जो कुटुम्ब का सदस्य है, विवाह हो जाने पर, सदस्य रहना समाप्त नहीं हो जाता ।"

वास्तविक निवास आवश्यक नहीं है ।

7.27. यह उल्लेख किया जा सकता है कि धारा 4 को आकृष्ट करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उन सदस्यों को जो उसके फायदे का दावा करते हैं, उस गृह में वास्तव में निवास करना चाहिए ।[2-3]

पांच. धारा 4 के अधीन आवेदन करने का प्रक्रम

7.28. उस प्रक्रम के बारे में, जिस पर धारा 4 (1) के अधीन आवेदन किया जा सकता है, पिछले समय में कुछ प्रश्न उद्भूत हुए हैं । यह ठहराया गया है कि वह विभाजन वाद के किसी भी प्रक्रम पर, यहां तक कि अन्तिम डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् भी किया जा सकता है । इस प्रकार, कलकत्ता के मामले[4] में अंतिम डिक्री 28-11-1913 को पारित की गई थी । प्रतिवादी 2 और 3 ने, जो कुटुम्ब के सदस्य थे, बेचे गए अंश को खरीदने के लिए दावा किया । यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि अंतिम

1. रुकिया विरुद्ध हजिया बी० बी, ए०आई०आर० 1953, मद्रास, 298 ।
2. नील कमल विरुद्ध कामाख्या चरण, ए०आई०आर० 1928 कलकत्ता, 539, 542 ।
3. मो० सुलेमान विरुद्ध मु० अमीर जान, ए०आई०आर० 1941, एलाहाबाद 281, 282 ।
4. प्रानकृष्ण विरुद्ध गुरुष चन्द्र राय, आई०एल०आर० 45, कलकत्ता, 873 ए०आई०आर० 1919 कलकत्ता, 1055 ।

डिक्री के पारित हो जाने के पश्चात, अधीनस्थ न्यायाधीश को धारा 4 के अधीन आदेश पारित करने का अधिकार नहीं था। यह संकथन उच्च न्यायालय द्वारा नकार दिया गया। कलकत्ता के एक पश्चातवर्ती मामले में,[1] यह ठहराया गया है कि "धारा 4 द्वारा प्रदत्त किए गए अधिकार का प्रयोग अंतिम आबंटन होने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है।"

इसी प्रकार का मत एलाहाबाद की न्यायपीठ द्वारा व्यक्त किया गया है कि जिसने यह ठहराया कि "धारा स्वयं कोई ऐसा प्रक्रम नियत नहीं करती जिस तक कि आवेदन किया जा सकता है। इसके विपरीत, धारा की भाषा यह दर्शित करती है कि वह किसी भी प्रक्रम पर किया जा सकता है।[2]"

पश्चात् की निर्णयज विधि।

7.29. कलकत्ता उच्च न्यायालय[3] ने अभी हाल के एक मामले में अभिव्यक्त रूप से यह अधिकथित किया है कि धारा 4 के अधीन आवेदन अन्तिम डिक्री के पारित होने के पश्चात् और डिक्री के निष्पादन में आबंटित सम्पत्ति के परव्यक्ति-अंतरिती को परिदत्त किए जाने के पूर्व किया जा सकता है। यह मत धारा 4 की स्कीम से संगत है, जो कुटुम्ब के सदस्यों के बीच निवास गृह के संबंध में सामंजस्य बनाए रखने के लिए उद्दिष्ट है।

इस स्थिति में, उपरोक्त विषय पर किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।

छह. डिक्री का स्वरूप

धारा 4(1) और डिक्री का स्वरूप – पूर्ववर्ती मामला।

7.30. धारा 4 (1) के संबंध में कुछ प्रक्रियात्मक बिन्दुओं पर विचार करना शेष है। धारा 4 (1) के अधीन पारित की जाने वाली डिक्री के यथार्थ स्वरूप के बारे में पूर्व में कुछ शंका रही है। एलाहाबाद के मामले में[4] न्यायालय ने, इस विषय पर अंतिम राय आख्यापित न करते हुए, निचले न्यायालय द्वारा उस मामले में पारित की गई डिक्री के बारे में शंका व्यक्त की। निचले न्यायालय द्वारा पारित की गई डिक्री मकान के लिए प्रतिकर के रूप में अधिनिर्णीत राशि (वाद के खर्चों सहित) प्रतिवादी के, जिसने धारा 4 के फायदे का दावा किया था, वादी के पक्ष में दी गई सादी धन-डिक्री थी। उच्च न्यायालय ने यह इंगित किया कि इस डिक्री का प्रभाव प्रतिवादी को वादी के अंश का अन्तरण करने का नहीं था और यह विचार व्यक्त किया कि "हमें डिक्री के उस यथावत् स्वरूप के बारे में कुछ शंका है जिसका ऐसे मामले में पारित किया जाना विधान मण्डल द्वारा आशयित था। उच्च न्यायालय ने एक सम्भावना पर विचार किया, अर्थात्—विधान मण्डल का आशय यह हो सकता था कि अंतरिती को धारा 4 के अधीन आवेदन करने वाले सदस्य के पक्ष में अन्तरण विलेख निष्पादित करना चाहिए (जैसा कि विक्रय की संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद के मामले में होता है), और यह कि, ऐसी दस्तावेज के निष्पादन के पश्चात्, वादी प्रतिवादी के प्रति असंदत्त क्रय धन के लिए दायी होगा और वादी, उसको संदाय न किया जाने की दशा में उसकी वसूली के लिए वाद चलाने का हकदार होगा। उच्च न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि विधान मण्डल कदाचित जटिल प्रक्रिया के पक्ष में नहीं था। किन्तु उसे इस बात में कोई सन्देह नहीं था कि पारित की जाने वाली डिक्री ऐसी होनी चाहिए जो विधि की दृष्टि से वादी के अंश का प्रतिवादी को अन्तरण करने का प्रभाव रखती हो और उस कारण से उसने डिक्री को इस प्रकार रूपांतरित किया कि जिससे यह निदेशित किया जा सके कि वादी प्रतिवादी से रकम वसूल करने का हकदार था और यह कि न्यायालय वादी को वादी के अंश का कब्जा दिला देगा और उन्हें उसका स्वामी घोषित करेगा।

पश्चात्वर्ती मामले–एलाहाबाद का मत।

7.31. तथापि पश्चात्वर्ती मामलों में इस पर अपेक्षाकृत अधिक निश्चित मत अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार[5] एलाहाबाद के एक पश्चात्वर्ती मामले में निम्नलिखित विचार व्यक्त किया गया—

> 'ऐसे मामलों में साधारणतः क्रेता को न्यायालय द्वारा नियत किए गए समय के भीतर न्यायालय में क्रय धन जमा करने के लिए कहा जाना चाहिए और ऐसा समय न्यायालय के विवेका-

---

1. बिरंक शशी राय विरुद्ध स्वर्णनाथ बेनर्जी, ए०आई०आर० 1926, कलकत्ता 95।
2. द्वारका दास विरुद्ध गोधावा, ए०आई०आर० 1939, एलाहाबाद 313 जिसका काशीनाथ वि० आत्माराम ए० आई० आर० 1973 एलाहाबाद में अनुसरण किया गया।
3. सत्यनारायण चक्रवर्ती विरुद्ध विश्वनाथ पाल, (1970) 74, सी०डब्ल्यू० एन० 871।
4. इत्याज अहमद विरुद्ध बुलाकीचन्द, आई०एल०आर० 39 एलाहाबाद, 672, 674, ए०आई०आर० 1917, एलाहाबाद 2,3 (पिगाट और राइव्ज न्यायाधीशगण)।
5. मो० सुलेमान खान विरुद्ध मु० अमीर जान, ए०आई०आर०, 1941 एलाहाबाद, 281, 283 (न्या० एस० के० दास) जिसका विवेचन सुमिला विरुद्ध धन्नू ए०आई०आर० 1952 नागपुर 193 में किया गया है।

नुसार नियत किया जाना चाहिए और बढ़ाया जाना चाहिए। यदि क्रेता उक्त क्रय धन न्यायालय द्वारा अनुज्ञात समय के भीतर जमा कर देता है तो वाद में क्रेता के पक्ष में यह घोषणा करने वाली डिक्री पारित की जानी चाहिए कि वादी के या वाद में सम्पत्ति के विभाजन का दावा करने वाले व्यक्तियों के समस्त अधिकारों का न्यायालय द्वारा किए गए विक्रय द्वारा प्रतिवादी को अन्तरण उक्त विक्रय कीमत का संदाय कर दिया जाने पर कर दिया गया है और विभाजन के लिए वादी का दावा खारिज किया जाता है। **यदि आवश्यक हो तो क्रेता को विक्रय प्रमाणपत्र भी दिया जा सकता है।** उस दशा में जब कि प्रतिवादी या क्रेता क्रय धन का संदाय करने में व्यतिक्रम करता है, वादी के पक्ष में विभाजन की डिक्री पारित की जाए और विभाजन की कार्यवाही की जाए।'

नागपुर उच्च न्यायालय का मत।

7.32. यह प्रश्न निर्वचन के लिए नागपुर उच्च न्यायालय[1] के समक्ष उपस्थित हुआ। उस मामले में, निचले अपील न्यायालय ने धारा 4 के अधीन दावा खारिज कर दिया था। उच्च न्यायालय ने अपील मंजूर करते हुए, इस आशय की व्याख्यात्मक डिक्री पारित की कि धारा 4 के अधीन दावेदार उसके अंश का क्रय करने के लिए अंतरिती को दी जाने के लिए एक विनिर्दिष्ट राशि एक निश्चित तारीख को विचारण न्यायालय में जमा करेंगे और, नियत समय के भीतर ऐसा निक्षेप कर दिया जाने पर, वह रकम अंतरिती को संदत्त की जाएगी, और दावेदार वादगत स्थल में वादी के **दो-तिहाई हिस्से के स्वामी बन जाएंगे**—और विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए वादी का दावा खारिज किया जाता है। यदि प्रतिवादी 2 और 3 वह राशि जमा नहीं करतें, तो धारा 4 के अधीन उनका दावा खारिज हो जाएगा और वादी अपने हिस्से के विभाजन के लिए विचारण न्यायालय को आवेदन करने का हकदार होगा।

यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस मामले में स्वयं डिक्री द्वारा अंश को धारा 4 के अधीन दावेदार में निहित किया गया।

पश्चात्वर्ती नागपुर का मामला।

7.33 नागपुर के एक पश्चात्वर्ती मामले[2] में, उच्च न्यायालय द्वारा निदेशित डिक्री यह थी कि प्रतिवादी (धारा 4 के अधीन दावेदार) द्वारा विनिर्दिष्ट तारीख तक निचले न्यायालय में रकम जमा की जाने पर, **वादी अपनी सम्पत्ति के अपने आधे हिस्से का विक्रय विलेख प्रतिवादी के खर्चे पर निष्पादित करेगा।** यदि ऐसा संदाय कर दिया जाता है तो पक्षकार निचले न्यायालय के खर्चे उठाएंगे। यदि उस तारीख को या उसके पूर्व संदाय नहीं किया जाता है तो निचला न्यायालय मकान के विभाजन के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित करेगा और विभाजन कराने के लिए कमिश्नर की नियुक्ति करेगा। उस स्थिति में प्रतिवादी निचले न्यायालय में हुए वादी के खर्चों का संदाय करेगा। इस प्रकार, इस मामले में अंतरिती को धारा 4 के अधीन दावेदार के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने का निदेश दिया गया था बजाय स्वयं डिक्री में यह उपबन्ध किया जाने के कि दावेदार स्वामी बन जाएगा।

मद्रास का मामला।

7.34. मद्रास के मामले में[3], धारा 4 के अधीन दावे के संबंध में एक पूर्ववर्ती वाद में एक पक्षकार के पक्ष में पारित की गई डिक्री विचार के लिए प्रस्तुत की गई। उच्च न्यायालय ने एलाहाबाद के पूर्ववर्ती मामले[4] में किए गए इस आशय के संप्रेक्षण कि कदाचित विधान मण्डल का आशय जटिल प्रक्रिया विहित करना नहीं था, उल्लेख करते हुए यह विचार व्यक्त किया कि अंतरिती को इस बात के लिए बाध्य करना कि वह उस सम्पत्ति को, जिसका उसने क्रय किया था, छोड़ दे, और उसके बदले उसे धारा 4 के अधीन दावेदार के विरुद्ध नया वाद लाने के अधिकार के सिवाय कुछ न देना उसके साथ सख्ती करना है।

प्रक्रमों को डिक्री में दर्शाया जाना चाहिए।

7.35. हम समझते हैं कि डिक्री का स्वरूप पश्चात्वर्ती एलाहाबाद के मामले[5] में सारत: उचित रीति से अधिकथित किया गया है, जिसका हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं। अनुसरित किए जाने वाले

---

1. सुमित्रा, विरुद्ध धन्नू, ए०आई०आर० 1952 नागपुर, 193,195 पैरा 15 और 16।
2. कल्याणमल विरुद्ध जगदीशप्रसाद, ए०आई०आर० 1953 नागपुर, 130,132, पैरा 14 (मंगलमूर्ती और देव, न्यायाधीशगण)।
3. सुब्रामनिया विरुद्ध शेख धवू, ए०आई०आर०, 1935 मद्रास, 628, 630 (न्या० वेल्श)।
4. इल्यास अहमद विरुद्ध बुलाकी चन्द, आई०एल०आर० 39, एलाहाबाद, 672, ए०आई०आर० 1917, एलाहाबाद 2।
5. मो० सुलेमान विरुद्ध नु० अमीर जान, ए० आई० आर० 1941 एलाहाबाद 281, 284 ऊपर का पैरा 7.31।

आवश्यक प्रक्रम डिक्री में दर्शित किए जाने चाहिएं। ये प्रक्रम निम्नानुसार हो सकते हैं :--

(एक) धारा 4 के अधीन दावेदार को यह निदेश दिया जाना चाहिए कि वह नियत राशि विनिर्दिष्ट समय के भीतर न्यायालय में जमा करे—तथापि समय न्यायालय के विवेकानुसार बढ़ाया जा सकता है।[1]

(न्यायालय को, धारा 4 (1) के अधीन किए गए आवेदन में पहले यह अभिनिश्चित करना चाहिए कि क्या सम्पत्ति निवास गृह है। यदि है, तो उसे पर व्यक्ति के हिस्से का मूल्यांकन करने के लिए अग्रसर होना चाहिए। उसके पश्चात् उसे सह अंशधारी से, जो सदस्य था, न्यायालय द्वारा नियत की जाने वाली तारीख तक रकम जमा करने की अपेक्षा करनी चाहिए)

(दो) यदि रकम समय पर जमा नहीं की जाती, तो अन्तरण निष्फल हो जाता है, और न्यायालय निवास गृह को सम्मिलित करते हुए सम्पूर्ण सम्पत्ति का विभाजन करने की कार्यवाही करता है।

धारा 4 के अधीन किया गया आवेदन खारिज कर दिया जाना चाहिए, और माप और सीमांकन करके विभाजन किए जाने का आदेश किया जाना चाहिए (या, यदि प्रारंभिक डिक्री पूर्व में पारित की जा चुकी है, तो उस पर कार्यवाही की जाएगी)

(तीन) यदि रकम समय पर जमा कर दी जाती है तो अंतरिती से यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वह अपना अंश हस्तांतरण पत्र निष्पादित करके आवेदक को अंतरित कर दे।

(चार) यदि अंतरिती हस्तांतरण पत्र निष्पादित नहीं करता है या निष्पादित करने में उपेक्षा करता है तो उसे विलेख निष्पादित करने का आदेश देने वाली डिक्री पारित की जानी चाहिए, और ऐसी डिक्री के निष्पादन में, न्यायालय स्वयं दस्तावेज का निष्पादन कर सकेगा।[2]

डिक्री का विक्रय की संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के सदृश होना।

7.36. इस प्रकार, डिक्री सारतः उस डिक्री के सदृश होगी जैसी कि न्यायालय स्थावर सम्पत्ति के विक्रय की संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के बाद में पारित करता है।[3-4]

नए उपबन्ध की आवश्यकता नहीं है।

7.37. अधिनियम में डिक्री के स्वरूप के बारे में अधिनियमन करना आवश्यक नहीं है। तथापि, हम उच्च न्यायालयों को यह सिफारिश करते हैं कि हमारे द्वारा दिया गया सुझाव[5] सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन नियमों में समाविष्ट किया जाए।

सात. मूल्यांकन की तारीख

हिस्से का मूल्यांकन कैसे किया जा गा।

7.38. जब आवेदक धारा 4 के अधीन 'वचनबन्ध' करता है—जिससे अभिप्रेत है ऐसी अशर्त प्रस्थापना जिससे वह मुकर नहीं सकता[6] तब न्यायालय को अंतरिती के हिस्से का मूल्यांकन करना पड़ता है और उसके विक्रय का निदेश देना होता है।[7] साधारणतः मूल्यांकन कमिश्नर की मार्फत किया जाता है,[8-9] किन्तु यदि मामला सीधा-सादा हो तो वह न्यायालय द्वारा किया जा सकता है।

1. सुबलचन्द्र विरुद्ध गोस्ठा (1956) 60 सी०डब्ल्यू० एन०829, 833 से तुलना।
2. आदेश 21, नियम 34, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908।
3. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का सं० 47) की धारा 28 से तुलना कीजिए।
4. निम्नलिखित भी देखिए।
   (क) ला कमीशन आफ इण्डिया की 27 वीं रिपोर्ट (सिविल प्रक्रिया संहिता), पृ० 58 (आदेश 20, नियम 12-क प्रस्तावित किया गया) और पृ० 172 (54वीं रिपोर्ट में उपांतरित नहीं किया गया)।
   (ख) आदेश 20, नियम 12-ए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908।
5. ऊपर के पैरा 7.35 और 7.36।
6. इल्यास अहमद विरुद्ध बुलाकीचन्द्र, आई०एल०आर०39, एलाहाबाद, 672, ए०आई०आर० 1917 एलाहाबाद 2।
7. अथप्पा विरुद्ध गोमासुन्दरम, ए०आई०आर० 1944, मद्रास, 425।
8. कमिश्नर के बारे में, सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 26, नियम 9 और 10 देखिए।
9. विभाजन के बारे में, सिविल प्रोसीजर कोड का आदेश 26, नियम 13 और 14 देखिए।

आवश्यक बात यह है कि विधि की दृष्टि में डिक्री का प्रभाव[1-2] यह होना चाहिए कि पर व्यक्ति के अंश का स्वामित्व धारा 4 के अधीन आवेदक को अन्तरित हो जाए ।

मूल्यांकन की तारीख—कलकत्ता उच्च न्यायालय का मत ।

7.39. उस तारीख के बारे में कुछ मतभेद है जिसके प्रति निर्देश से मूल्यांकन किया जाना चाहिए । कलकत्ता उच्च न्यायालय के मत[3] के अनुसार, वह सुसंगत तारीख जिसके बारे में विचार किया जाना आवश्यक है, वह तारीख है जब वचनबंध किया जाता है और समय के केवल उसी प्रक्रम पर मूल्यांकन किया जा सकता है जैसा कि धारा में परिकल्पित है । इस विषय पर उड़ीसा के निर्णय[4] में दिए गए तर्कों से असहमत होते हुए, न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षण किए—

"मेरे विचार से, धारा 4 यह अपेक्षा नहीं करती कि बाजार मूल्य वह माना जाना चाहिए जो वाद के संस्थित किए जाने की तारीख को हो । यह सत्य है कि चूंकि पर व्यक्ति द्वारा सहअंशधारी को किया गया विक्रय बलात् विक्रय के स्वरूप का होने के कारण या विवशता के अधीन होने के कारण, परिसर का मूल्यांकन बहुत सावधानी और सतर्कता से किया जाना चाहिए ताकि किसी भी पक्षकार को कोई कष्ट न हो ।

तथापि वादी के विद्वान अधिवक्ता का यह निवेदन मुझे काफी सबल प्रतीत होता है कि उसका मूल्यांकन उस तारीख को किया जाना चाहिए जब क्रय करने का वचनबंध किया जाता है, और मेरे विचार में धारा 4 की शब्दयोजना भी यह उपदर्शित करती है कि ऐसा मूल्यांकन केवल तभी किया जाना चाहिए जब कुटुम्ब के किसी सदस्य द्वारा प्रश्नगत अंश का क्रय करने का वचनबंध किया जाता है ।"

उड़ीसा उच्च न्यायालय का मत ।

7.40. उड़ीसा उच्च न्यायालय के मत[5] के अनुसार इस मामले में वह बाजार मूल्य लागू होता है जो वाद की तारीख को विद्यमान हो । नागपुर[6] में भी विवक्षित रूप से यही दृष्टिकोण अपनाया गया था । वाद की तारीख को क्रय मूल्य और बाजार मूल्य में प्रतिस्पर्धा होने के कारण यह बिन्दु विनिर्दिष्टत: विवादग्रस्त नहीं था ।

मूल्यांकन की तारीख के बारे में स्पष्टीकरण की आवश्यकता ।

7.41. उपरोक्त बिन्दु पर स्पष्टीकरण की आवश्यकता स्पष्ट है । यह स्पष्ट है कि मूल्यांकन पर व्यक्ति क्रेता तथा पूर्व अविभक्त कुटुम्ब के सह-अंशधारी के लिए उचित होना चाहिए । यह विनिश्चित करना आसान नहीं है कि इस विषय पर इन दो दृष्टिकोणों में से किस दृष्टिकोण को संहिताबद्ध किया जाना चाहिए—कलकत्ता उच्च न्यायालय के मत को या उड़ीसा के मत को । दोनों में से प्रत्येक मत के समर्थन में बहुत कुछ कहा जा सकता है । तथापि, सन्तुलित दृष्टिकोण के आधार पर हमें यह प्रतीत होता है कि मूल्यांकन सह-अंशधारी द्वारा दिए गए वचनबंध की तारीख के प्रति निर्देश से करना युक्तियुक्त होगा । इससे, वचनबंध के पश्चात् बाजार कीमत में होने वाले उतार-चढ़ाव से सह-अंशधारी पर पड़ने वाले प्रभाव को निराकृत किया जा सकता है ।

धारा 4 में नवीन उपधारा जोड़ने के बारे में सिफारिश ।

7.42. तद्नुसार, हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 4 में एक नई उपधारा निम्नानुसार जोड़ी जाए :—

"(3) उपधारा (1) के अधीन मूल्यांकन उस बाजार मूल्य के प्रति निर्देश से किया जाएगा जो उस तारीख को हो जिसको सह-अंशधारी हिस्से का क्रय करने का वचनबंध करता है ।"

1. निरंक शशी विरुद्ध स्वर्णनाथ, ए०आई०आर० 1926 कलकत्ता 65 ।
2. डिक्री के प्ररूप के बारे में ऊपर देखिए ।
3. मनमोहन विरुद्ध वी० ऊषारानी ए०आई०आर० 1979 कलकत्ता, 79, 83 पैरा 15 ।
4. भिखारी बेहेरा विरुद्ध धर्मनन्द ए०आई०आर० 1963, उड़ीसा 40, नीचे का पैरा 40 ।
5. वही, पैरा 40,41, पैरा 6 ।
6. सुमित्रा विरुद्ध धन्नू, ए०आई०आर० नागपुर 193,195,196, पैरा 13-14 ।

अध्याय 8

विविध—धारा 5 से 10

अध्ययन की व्याप्ति । 8.1. हम अधिनियम के महत्वपूर्ण उपबन्धों पर चर्चा कर चुके हैं । अधिनियम के शेष भाग में विविध स्वरूप के उपबन्ध अन्तर्विष्ट हैं जिनका व्यापक विवेचन करना अपेक्षित नहीं है ।

धारा 5 । 8.2. धारा 5 विभाजन के किसी वाद में किसी निःशक्त पक्षकार की ओर से की जाने वाले कतिपय कार्यों से संबंधित है और निम्नानुसार उपबन्ध करती है :—

"5. विभाजन के किसी वाद में किसी निःशक्त पक्षकार की ओर से ऐसे वाद में ऐसे पक्षकार की ओर से कार्य करने के लिए प्राधिकृत व्यक्ति विक्रय के लिए अनुरोध कर सकेगा या क्रय करने का वचनबन्ध कर सकेगा या क्रय करने की इजाजत का आवेदन कर सकेगा, परन्तु न्यायालय किसी ऐसे अनुरोध, वचनबंध या आवेदन का अनुपालन करने के लिए तब तक आबद्ध नहीं होगा जब तक उसकी यह राय न हो कि विक्रय या क्रय ऐसे निःशक्त पक्षकार के फायदे के लिए होगा ।"

यह धारा सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों[1] के सदृश है जिसके अधीन वादमित्र या वादार्थ संरक्षक द्वारा करार या समझौते के लिए न्यायालय की इजाजत अपेक्षित है ।

धारा 6 । 8.3. धारा 6, जो अधिनियम के अधीन विक्रयों में बोली लगाने से सम्बद्ध कतिपय विषयों से संबंधित है, निम्नानुसार है :—

"6. आरक्षित बोली और हिस्साधारकों द्वारा बोली लगाना—(1) धारा 2 के अधीन प्रत्येक विक्रय, आरक्षित बोली रखकर किया जाएगा और ऐसी बोली की रकम, न्यायालय द्वारा ऐसी रीति से नियत की जाएगी, जैसा वह ठीक समझे, और समय-समय पर उसमें फेरफार किए जा सकेंगे ।

(2) ऐसे विषय पर प्रत्येक हिस्साधारक को ऐसे निबंधनों पर बोली लगाने की छूट होगी जो न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत हों । ये निबंधन निक्षेप न करने के बारे में या क्रय मूल्य के मुजरा करने के या हिसाब के बारे में हो सकेंगे ।

(3) यदि दो या अधिक व्यक्ति, जिनमें से एक उस सम्पत्ति का हिस्साधारक है, ऐसे विक्रय पर एक ही रकम की बोली अलग-अलग लगाते हैं तो ऐसी बोली के बारे में यह समझा जायगा कि वह हिस्साधारक की बोली है ।"

धारा 6(1) और प्ररक्षित कीमत । 8.4. धारा 6 (1) का यह उपबन्ध कि न्यायालय[2] प्ररक्षित कीमत नियत करेगा हितप्रद उपबन्ध है या आवश्यक उपबंध भी है क्योंकि ऐसा न होने पर सह-अंशधारियों में से एक सह-अंशधारी (नीलाम में) सम्पत्ति की बोली कम कीमत पर खतम करवा सकेगा और इससे अन्य सह-अंशधारियों को हानि होगी ।

धारा 6(3) । 8.5. धारा 6 की उपधारा (3) भी विशिष्ट महत्व की है जिसमें यह प्रकट किया गया है कि विधि, जैसी कि वह वर्तमान में है, हिस्साधारक और पर व्यक्ति विक्रय में समान रूप से बोली लगा सकते हैं ।[2] इस प्रश्न पर कि क्या कतिपय विशेष मामलों में न्यायालय को यह शक्ति देना आवश्यक है कि वह विक्रय को सह-अंशधारियों तक ही सीमित रखे, बाद में विचार किया जाएगा ।[3]

---

1. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 32, नियम 7 ।
2. सुब्बमा विरुद्ध वीरय्या, ए०आई०आर० 1932, मद्रास 15,17 ।
3. धारा 7 से संबंधित विवेचन नीचे के पैरा 8 7 में देखिए ।

8.6. अब हम धारा 7 पर आते हैं, जो निम्नानुसार है :— धारा 7।

"7. इसमें इसके पूर्व जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, जब इस अधिनियम के अधीन किसी सम्पत्ति का विक्रय करने का निदेश दिया गया है, तब जहां तक हो सके निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाएगी, अर्थात् :—

(क) यदि कलकत्ता, मद्रास या मुम्बई के उच्च न्यायालय की अपनी आरंभिक अधिकारिता के प्रयोग में दी गई किसी डिक्री या आदेश के अधीन उस संपत्ति का विक्रय किया जाता है तो अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता में रजिस्ट्रार द्वारा सम्पत्ति के विक्रय के लिए ऐसे न्यायालय की प्रक्रिया,

(ख) यदि किसी अन्य न्यायालय की डिक्री या आदेश के अधीन उस सम्पत्ति का विक्रय किया जाता है तो ऐसी प्रक्रिया, जैसी कि उच्च न्यायालय समय-समय पर, नियम द्वारा इस निमित्त विहित करे, और जब तक ऐसे नियम नहीं बनाए जाते, तब तक डिक्रियों के निष्पादन में विक्रयों की बाबत कोड आफ सिविल प्रोसीजर में विहित प्रक्रिया।

धारा 7 (क) आरंभिक अधिकारिता वाले उच्च न्यायालय-सिफारिश।

8.7. धारा 7 (क) में प्रेसिडेंसी नगरों के केवल तीन उच्च न्यायालयों का उल्लेख किया गया है। अधिनियम के पारित किए जाने के पश्चात् आरंभिक सिविल अधिकारिता वाले कुछ उच्च न्यायालय स्थापित किए गए हैं और खण्ड (क) को इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए कि वे उच्च न्यायालय भी उसके अंतर्गत आ जाएं। तदनुसार हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 7 (क) को यथोचित रूप से पुनरीक्षित किया जाए।[1]

धारा 7 और सह-अंशधारियों के बीच विक्रय-सिफारिश।

8.8. जब धारा 2 के अधीन विक्रय का आदेश दिया जाता है तब अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया (नियमों के अध्यधीन) वहीं होती है जो निष्पादन विक्रयों के लिए होती है। विक्रय का सह-अंशधारियों तक सीमित रखा जाना अनुज्ञेय नहीं है जिस विषय[2] का हम पूर्व में उल्लेख कर चुके है।

कुछ न्यायालयों की यह उपधारणा है कि ऐसी शक्ति विद्यमान है, [3-5] किन्तु हमारा विचार है कि अधिनियम जैसा कि वह वर्तमान में है, ऐसी शक्ति नहीं देता।[6]

ऐसी शक्ति न्याय के हित में आवश्यक है। कतिपय विशेष मामलों में, उदाहरणार्थ, ऐसे कौटुम्बिक निवास गृह की दशा में जिससे सह-अंशधारियों का भावात्मक लगाव है, न्यायालय को यह शक्ति होनी चाहिए कि वह विक्रय को सह-अंशधारियों तक सीमित रखे। निःसंदेह, साधारणतः लोक नीलाम द्वारा विक्रय से उस कीमत की अपेक्षा अधिक कीमत मिलेगी जो कुछ पक्षकारों तक सीमित रखे गए विक्रय से प्राप्त हो सकती है। किन्तु इस प्रकार के विशेष मामले हो सकते हैं जिनमें केवल धन संबंधी पहलू ही एकमात्र सुसंगत पहलू न हो, और अन्य अभिभावी कारणों से वह आवश्यक हो सकता है कि केवल सह-अंशधारियों को ही बोली लगाने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए। अतः हम यह सिफारिस करते हैं कि धारा 7 को उपधारा (1) के रूप में पुनःक्रमांकित किया जाए और इस धारा में एक नई उपधारा इस दृष्टि से अन्तःस्थापित की जाए कि जिससे ऊपर वर्णित प्रकार की शक्ति के लिए उपबन्ध हो सके।[7]

धारा 7 और विक्रय के अनुक्रम में पारित किए गए आदेश।

8.9. धारा 7 (ख) के अधीन, अधिनियम के अधीन विक्रय की प्रक्रिया (उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के अध्यधीन रहते हुए) वही है जो सिविल प्रक्रिया संहिता में डिक्रियों के निष्पादन में विक्रयों के संबंध में विहित की गयी है। इससे कतिपय महत्वपूर्ण परिणाम उद्भूत होते हैं। उदाहरणार्थ, विक्रय के संबंध में आपत्तियों पर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21, नियम 89 के अधीन कार्यवाही की जानी होगी। यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि क्या अधिनियम

---

1. पुनः प्रारूपण के लिए नीचे का पैरा 8.12 देखिए।
2. ऊपर का विवेचन देखिए।
3. राम प्रसाद विरुद्ध मु० मुकन्दी, ए०आई०आर० 1929 इलाहाबाद, 443 (बनर्जी और किंग न्याया०)।
4. मोहित कृष्ण विरुद्ध प्रनव० चन्दर, ए०आई०आर० 1930, कलकत्ता 616, 619 (एस०के० घोस, न्या०)।
5. बर्रेन्द्र नाथ विरुद्ध हरीदास (1911) 15 सी०डब्ल्यू०एन० 552 (मुकर्जी, न्या०)।
6. गदाधर विरुद्ध जानकीनाथ, ए०आई०आर० 1969 कलकत्ता, 66,67 पैरा 36-40।
7. धारा 7 के पुनर्प्रारूपण के लिए नीचे का पैरा 8.12 देखिए।

के अधीन किए गए विक्रय के संबंध में की गई आपत्ति को खारिज करने वाले आदेश के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 43, नियम 1(जे), जो आदेश 21 के नियम 72 या नियम 92 के अधीन विक्रय को अपास्त करने या अपास्त करने से इन्कार करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील अनुज्ञात करता है, के अधीन अपील की जा सकती है।

निर्णयज विधि।

8.10. पंजाब उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के विनिश्चय[1] में यह ठहराया गया कि ऐसा आदेश अपीलीय है। तथापि, उस उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के एक पश्चात्वर्ती निर्णय[2] में इस मत को अमान्य कर दिया गया। यह ठहराया गया कि धारा 7 का प्रभाव, विक्रय कार्यवाहियों को "निष्पादन कार्यवाहियों में संपरिवर्तित करना नहीं है, और चूंकि अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से या आवश्यक विवक्षा से अपील के लिए कोई उपबन्ध नहीं किया गया है, और यह उपबन्ध नहीं किया गया है कि किसी व्यक्तिको, जो अधिनियम के अधीन विक्रय को अपास्त करने से इंकार करने वाले आदेश से संतुष्ट न हो, अपील के वे ही अधिकार होंगे जो डिक्री के निष्पादन में विक्रय को अपास्त करने से इन्कार करने वाले आदेश से असंतुष्ट व्यक्ति को होते हैं, अतः इस धारा से अपील के किसी अधिकार की उपधारणा नहीं की जा सकती।

उपरोक्त विषय में कोई परिवर्तन आवश्यक नहीं है।

8.11. हम उक्त पश्चात्वर्ती मामले में अधिकथित प्रतिपादना में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं समझते।

पुनरीक्षित धारा 7।

8.12. उपरोक्त विवेचन के प्रकाश में, धारा 7 निम्नानुसार पुनरीक्षित किया जाना चाहिए :—

"धारा 7. विक्रयों की दशा में अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया.—(1) इसमें इसके पूर्व जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, जब इस अधिनियम के अधीन किसी सम्पत्ति का विक्रय करने का निदेश दिया गया है, तब जहां तक हो सके निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाएगी, अर्थात् :—

(क) यदि उच्च न्यायालय की अपनी आरंभिक अधिकारिता के प्रयोग में दी गई किसी डिक्री या आदेश के अधीन उस सम्पत्ति का विक्रय किया जाता है तो अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता में रजिस्ट्रार द्वारा सम्पत्ति के विक्रय के लिए ऐसे न्यायालय की प्रक्रिया,

(ख) यदि किसी अन्य न्यायालय की डिक्री या आदेश के अधीन उस सम्पत्ति का विक्रय किया जाता है तो ऐसी प्रक्रिया जैसी कि उच्च न्यायालय समय-समय पर, नियम द्वारा इस निमित्त विहित करे, और जब तक ऐसे नियम नहीं बनाए जाते, तब तक डिक्रियों के निष्पादन में विक्रयों की बाबत सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में विहित प्रक्रिया।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय किसी विशिष्ट मामले में, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, यह निदेश दे सकेगा कि केवल सह-अंशधारी, या केवल सह-अंशधारी और ऐसे अन्य व्यक्ति, जिन्हें न्यायालय विनिर्दिष्ट करे, सम्पत्ति के विक्रय में बोली लगाने के हकदार होंगे।"

धारा 8—अपील।

8.13. अब हम धारा 8 पर आते हैं जो यह उपबंध करती है कि धारा 2, 3 या 4 के अधीन विक्रय के लिए न्यायालय द्वारा किया गया कोई आदेश कोड आफ सिविल प्रोसीजर की धारा 2 के अर्थ में डिक्री समझा जाएगा। जैसा कि सुविदित है, ऐसे उपबन्धों का प्रश्नगत आदेशों की अपीलनीयता के संबंध में महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। उदाहरणार्थ, जहां विचारण न्यायालय विक्रय अनुज्ञात कर देता है, किन्तु अपील न्यायालय विक्रय के लिए आदेश पारित करने से इन्कार कर देता है, और इस प्रकार विचारण न्यायालय के आदेश को उलट देता है, वहां विचारण न्यायालय का आदेश डिक्री होता है और द्वितीय अपील के अधीन होता है यदि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील की अपेक्षाओं की पूर्ति हो जाती है।[3]

1. हंसराज विरुद्ध निरंजनलाल, ए०आई०आर० 1952, पंजाब, 159।

2. हुकमचन्द विरुद्ध हरीशचन्द्र, ए०आई०आर० 1959 पंजाब 129, 130 पैरा 6 से 8 (भण्डारी, मु० न्या० और दुलत, न्या०)।

3. सत्यभामा विरुद्ध जतीन्द्र मोहन, ए०आई०आर० 1929 कलकत्ता 270।

तथापि, धारा 4 के अधीन आवेदन को नामंजूर करने वाला आदेश "डिक्री" नहीं है क्योंकि वह इस धारा के अन्तर्गत नहीं आती, किन्तु उसकी शुद्धता को विभाजन की अंतिम डिक्री की अपील में प्रश्नगत किया जा सकता है।[1-2] धारा 3 के अधीन आवेदन को नामंजूर करने वाले आदेश के बारे में भी यही स्थिति है।[3] हम समझते हैं कि विक्रय के लिए आवेदन को नामंजूर करने वाले आदेश को भी, उसके महत्वको दृष्टिगत रखते हुए, डिक्री समझा जाना चाहिए। धारा 8 को निम्नानुसार पुनरीक्षित किया जाना चाहिए :—

"8. **विक्रय के लिए आदेशों का डिक्री समझा जाना**—धारा 2, 3 या 4 के अधीन विक्रय के लिए या **विक्रय के लिए आवेदन को नामंजूर करते हुए** न्यायालय द्वारा दिया गया आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 2 के अर्थ में डिक्री समझा जाएगा।"

8.14. यह ठहराया गया है[4] कि जब किसी ऐसे मामले में भी, जो विभाजन अधिनियम के बाहर हो (अर्थात् जिसमें पक्षकारों द्वारा आवेदन न किया गया हो), विभाजन के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित हो जाने के पश्चात्, आदेश को अतिरिक्त प्रारंभिक डिक्री माना जा सकता है और इसलिए वह अपीलनीय है। आदेश का बाद में सम्पूर्ण कार्यवाहियों पर सामान्य प्रभाव पड़ता है, और वह वादी को अपने हिस्से की स्पेसी में हिस्सा पाने से प्रवारित करता है, और इस प्रकार उस अधिकार को नकरता है जिसका वह सह-अंशधारी की हैसियत से हकदार है, और वह, जहां तक विचारण न्यायालय का संबंध है, अन्तिम और निश्चायक है। धारा 8 और अधिनियम के बाहर पारित किया गया विक्रय के लिए आदेश।

तथापि ऊपर जिस बिन्दु पर चर्चा की गई है, उसके कारण इस धारा में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है।

8.15. धारा 9 यह उपबन्ध करती है कि विभाजन के किसी वाद में यदि न्यायालय ठीक समझता है तो वह उस सम्पत्ति के, जिससे वाद संबंधित है, किसी भाग के विभाजन के लिए और शेष के विक्रय के लिए इस अधिनियम के अधीन डिक्री दे सकेगा। इस धारा में कोई परिवर्तन आवश्यक नहीं है। धारा 9।

8.16. धारा 10 यह उपबन्ध करती है कि यह अधिनियम उसके प्रारंभ के पूर्व संस्थित ऐसे वादों को लागू होगा जिनमें न्यायालय द्वारा सम्पत्ति के विभाजन के लिए कोई भी स्कीम अन्तिम रूप से अनुमोदित नहीं की गई है। आज के समय में इस धारा की कोई उपयोगिता नहीं है और हम सिफारिश करते हैं कि उसे निरस्त कर दिया जाए। धारा 10-निरसन की सिफारिश की जाती है।

8.17. इस रिपोर्ट के परिशिष्ट 1 और परिशिष्ट 2 में 1868 और 1876 के अंग्रेजी एक्ट का (जो अब निरस्त हो चुके हैं) पाठ दिया गया है। चूंकि इन एक्टों की प्रतियां सहज उपलब्ध नहीं हैं अतः हमने उन्हें निर्देश की सुविधा के लिए इसमें सम्मिलित किया है। परिशिष्ट 3 में वर्तमान अंग्रेजी विधि और उसके उद्भव के संबंध में विवेचन किया गया है। परिशिष्ट।

---

1. भुवन मोहन विरुद्ध ब्रोजेन्द्र चन्द्र, ए०आई०आर० 1941 कलकत्ता 311।
2. वली मोहम्मद विरुद्ध शमसुल हक, (1967), एलाहाबाद ला जरनल 379, ए०आई०आर० 1937 नागपुर 4 से विसम्मति प्रकट की गई।
3. नितीश चन्द्र विरुद्ध प्रमोदकुमार, ए०आई०आर० 1953, कलकत्ता, 18, पैरा 9 (आर०पी० मुकर्जी और लाहिरी, न्यायाधीशगण)।
4. विसन्ना विरुद्ध विसाब्रह्याम, ए०आई०आर० 1957, ए० पी० 25 (विश्वनाथ शास्त्री, न्या०) मलीमू विरुद्ध मलीवेमिनाल, ए०आई०आर० 1968 केरल 282 में अनुसरित।

अध्याय 9

सिफ़ारिशों का संक्षेप

हम इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों का संक्षेप नीचे दे रहे हैं।

अध्याय 5—विक्रय की शक्ति : धारा 1 — 2

(1) धारा 2 (विभाजन वादों में विभाजन के बदले विक्रय का आदेश देने की शक्ति) को इस प्रकार पुनरीक्षित किया जाना चाहिए कि जिससे यह उपबन्ध हो सके कि जहां विभाजन युक्तियुक्त रूप से या सुविधापूर्वक नहीं किया जा सकता है और सम्पत्ति का विक्रय और आगमों का वितरण अधिक फायदाप्रद होगा तो न्यायालय, किसी भी हिस्साधारक के अनुरोध पर ऐसे विक्रय और वितरण का निदेश दे सकेगा। इसके अतिरिक्त, यदि किसी हिस्साधारक द्वारा कोई अनुरोध न भी किया गया हो, तो भी न्यायालय, यदि वह न्याय के हित में उचित समझता है, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, ऐसे विक्रय और वितरण का निदेश दे सकेगा।[1]

इस धारा के प्रारंभिक शब्दों को भी सुझाए गए अनुसार पुनरीक्षित किया जाना चाहिए।[2]

अध्याय 6—हिस्साधारकों को विक्रय : धारा 3

(2) धारा 3(1) (प्रक्रिया, जब हिस्सेदार क्रय करने का वचन बन्ध करता है) को जिसके अधीन वर्तमान में केवल कतिपय हिस्साधारक—अर्थात् वे हिस्साधारक जिन्होंने धारा 2 के अधीन वाद नहीं चलाया है—क्रय के लिए आवेदन कर सकते हैं, इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए जिससे कोई भी हिस्साधारक उस उपधारा के अधीन आवेदन कर सके।[3]

(3) धारा 3 में, एक नवीन उपधारा (1क) यह उपबन्ध करने के लिए अन्तः स्थापित की जानी चाहिए कि यदि, किसी ऐसे मामले में जिसमें न्यायालय धारा 2 के अधीन विक्रय का निदेश देता है, कोई हिस्साधारक वाद सम्पत्ति को आंके गए मूल्य पर क्रय करने की इजाजत के लिए आवेदन करता है, तो न्यायालय मूल्यांकन का आदेश दे सकेगा और उस हिस्साधारक को इस प्रकार अभिनिश्चित कीमत पर उस सम्पत्ति का विक्रय करने की प्रस्थापना करेगा और उस निमित्त सभी आवश्यक और उचित निदेश दे सकेगा।[4]

(4) धारा 3 में इस प्रभाव का एक स्पष्टीकरण अन्तःस्थापित किया जाना चाहिए कि उपधारा (1) के अधीन या (नवीनतः अन्तःस्थापित) उपधारा (1क) के अधीन कोई आवेदन वस्तुतः विक्रय किए जाने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकेगा।[5]

(5) धारा 3(2) में पारिणामिक परिवर्तन किए जा सकते हैं।[6]

अध्याय 7—निवासगृह का हिस्सा : धारा 4

(6) धारा 4 (निवास गृह में हिस्से के अंतरिती द्वारा विभाजन वाद) को इस प्रकार व्यापक बनाया जाना चाहिए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि अंतरिती के हिस्से के क्रय का अधिकार किसी ऐसे सह-अंशधारी को उपलब्ध हो सके जो कुटुम्ब का सदस्य है—

(क) चाहे अंतरिती वादी हो या प्रतिवादी, और

(ख) चाहे अंतरिती ने विनिर्दिष्ट आबंटन के लिए प्रार्थना की हो या नहीं।

---

1. पैरा 5.21
2. पैरा 5.20
3. पैरा 6.7
4. पैरा 6.8
5. पैरा 6.14
6. पैरा 6.15

परन्तु यह तब जब कि वाद विभाजन के लिए वाद हो (प्रसामान्य स्थिति) या अंतरिती के विरुद्ध कब्जे के लिए वाद हो (वह स्थिति जो उदाहरणार्थ तब उद्भूत हो सकती है जब वादी सदस्य कब्जा रहित हो[1]) ।

(7) जबकि धारा 4 के अधीन पारित की जाने वाली डिक्री के प्ररूप के बारे में उपबंध का अधिनियमन आवश्यक नहीं है, रिपोर्ट में उस रूपरेखा के, जिसके आधार पर उचित डिक्री तैयार की जा सकती है, संबंध में दिए गए सुझाव को सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन बनाए जाने वाले नियमों में समाविष्ट किए जाने के लिए उच्च न्यायालयों[2] से सिफारिश की जाती है ।

(8) धारा 4 में एक स्पष्टीकरण यह उपबंध करने के लिए जोड़ा जाना चाहिए कि इस धारा के प्रयोजनों के लिए , कोई व्यक्ति, विवाह हो जाने पर, उस कुटुम्ब का सदस्य बने रहने से प्रवरित नहीं हो जाता ।[3]

(9) धारा 4 में, इस आशय की एक नई उपधारा अन्त:स्थापित की जानी चाहिए कि धारा 4(1) के अधीन मूल्यांकन उस तारीख को होने वाले बाजार मूल्य के प्रति निर्देश से किया जाना चाहिए जिसको हिस्से का क्रय करने का वचनबंध करना है ।[4]

(10) अधिनियम के अधीन विक्रयों की दशा में अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया का जहां तक संबंध है, आरंभिक अधिकारिता रखने वाले सभी उच्च न्यायालय धारा 7(क) द्वारा शासित होने चाहिए । तद्नुसार, तीन प्रेसीडेन्सी नगरों के उच्च न्यायालयों के विनिर्दिष्ट उल्लेख को उस खण्ड में से निकाल देना चाहिए ।[5]

(11) धारा 7 में, एक नवीन धारा यह उपबंध करने के लिये अन्त:स्थापित की जानी चाहिए कि न्यायालय (समुचित मामले में) यह निदेश दे सकती है कि सम्पत्ति का विक्रय केवल सह-अंशधारियों के बीच किया जाना चाहिए ।[6]

(12) धारा 8 को इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए कि यह उपबंध हो सके कि विक्रय के लिए आवेदन को भी डिक्री माना जा सके ।[7]

(13) धारा 10(लंबित वादों को अधिनियम का लागू होना) निरस्त कर दी जानी चाहिए ।[8]

पी० पी० दीक्षित———अध्यक्ष

एस० एन० शंकर———सदस्य

गंगेश्वर प्रसाद———सदस्य

पी० एम० बक्शी———सदस्य-सचिव

1. पैरा 7.23
2. पैरा 7.35 से 7.37
3. पैरा 7.26
4. पैरा 7.42
5. पैरा 8.7 और 8.12
6. पैरा 8.8 और 8.12
7. पैरा 8.13
8. पैरा 8.16

परिशिष्ट 1

पार्टीशन एक्ट, 1868

(31 और 32 विक० सी० 40) (निरसित)

विभाजन से संबंधित विधि को संशोधित करने हेतु अधिनियम

[25 जून, 1868]

एकत्रित वर्तमान संसद् में महासम्राज्ञी द्वारा स्पिरिच्युअल और टोम्पोरल लार्डस तथा कामन्स की सलाह और सम्मति से और उनके प्राधिकार से यह निम्नलिखित रूप में अधिनियमित हो :—

संक्षिप्त नाम ।

1. यह अधिनियम पार्टीशन एक्ट, 1868 कहलाएगा ।

2. इस अधिनियम में पद "न्यायालय" से अभिप्रेत है संबंधित क्षेत्रों के भीतर इंग्लैंड का कोर्ट ऑफ चान्सरी, आयरलैंड का कोर्ट ऑफ चान्सरी, आयरलैंड का लैण्डेड एस्टेट्यूस कोर्ट तथा लंकास्टर के पेलेटाइन काउण्टी का कोर्ट ऑफ चान्सरी ।

विभाजन के बदले विक्रय का आदेश देने की न्यायालय की शक्ति ।

3. विभाजन के किसी वाद में, जिसमें उस दशा में जब कि यह अधिनियम पारित नहीं किया गया होता, विभाजन की डिक्री दी जा सकती थी, यदि न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि उस सम्पत्ति की, जिससे वाद संबंधित है, प्रकृति के कारण या पक्षकारों उसमें हितबद्ध या सम्भाव्य रूप से हितबद्ध पक्षकारों की संख्या के कारण, या उन पक्षकारों में से कुछ पक्षकारों की निर्योग्यता के अभाव के कारण, या किसी अन्य परिस्थिति के कारण, सम्पत्ति के उनके बीच विभाजन की अपेक्षा सम्पत्ति का विक्रय और आगमों का वितरण हितबद्ध पक्षकारों के लिए अधिक फायदाप्रद होगा, तो न्यायालय, यदि वह उचित समझे, हितबद्ध पक्षकारों में से किसी पक्षकार के अनुरोध पर, और उनमें से किन्हीं अन्य की विसम्मति या निर्योग्यता के होते हुए भी, तदनुसार सम्पत्ति के विक्रय का आदेश देगा, और समस्त आवश्यक या उचित पारिणामिक निदेश दे सकेगा ।

हितबद्ध पक्षकारों में से कतिपय पक्षकारों के आवेदन पर विक्रय ।

4. विभाजन के किसी वाद में, जिसमें उस दशा में जब कि यह अधिनियम पारित न किया गया होता, विभाजन की डिक्री दी जा सकती थी, **यदि वह पक्षकार या वे पक्षकार, जो आधे हिस्से या उससे अधिक में अलग-अलग या सामूहिक रूप से हितबद्ध हैं,** न्यायालय से हितबद्ध पक्षकारों के बीच सम्पत्ति के विभाजन की बजाय सम्पत्ति के विक्रय और आगमों के वितरण का निदेश देने के लिए अनुरोध करते हैं तो न्यायालय, जब तक कि वह इसके प्रतिकूल कोई ठोस कारण नहीं देखता है, तदनुसार सम्पत्ति के विक्रय का निदेश देगा, और समस्त आवश्यक या उचित पारिणामिक निदेश देगा ।

विक्रय चाहने वाले पक्षकार के हिस्से के क्रय के बारे में ।

5. विभाजन के किसी वाद में, जिसमें उस दशा में जब कि यह अधिनियम पारित नहीं किया गया होता, विक्रय की डिक्री दी जा सकती थी, यदि उस सम्पत्ति में, जिससे वाद संबंधित है, हितबद्ध कोई पक्षकार न्यायालय से हितबद्ध पक्षकारों के बीच सम्पत्ति के विभाजन की बजाय सम्पत्ति के विक्रय और आगमों के वितरण का निदेश देने के लिए अनुरोध करता है, तो न्यायालय, यदि वह उचित समझता है, जब तक कि सम्पत्ति में हितबद्ध अन्य पक्षकार या उनमें से कुछ विक्रय का अनुरोध करने वाले पक्षकार के हिस्से का क्रय करने का वचनबंध नहीं करता है, उस सम्पत्ति के विक्रय का निदेश दे सकेगा, और समस्त आवश्यक या उचित पारिणामिक निदेश दे सकेगा, और ऐसा वचनबंध किया जाने की दशा में, न्यायालय विक्रय के लिए अनुरोध करने वाले पक्षकार के हिस्से का मूल्यांकन ऐसी रीति में किए जाने का आदेश दे सकेगा जो न्यायालय उचित समझे और समस्त आवश्यक या उचित पारिणामिक निदेश दे सकेगा ।

बोली लगाने के लिए हितबद्ध पक्षकारों का प्राधिकार ।

6. इस अधिनियम के अधीन किसी विक्रय में न्यायालय, यदि वह उचित समझता है, सम्पत्ति में हितबद्ध किसी पक्षकार को विक्रय में बोली लगाने के लिए, निक्षेप के असंदाय के बारे में या क्रय धन या उसके किसी भाग का संदाय करने की बजाय उसकी मुजराई या लेखांकन करने के बारे में, या अन्य बातों के संबंध में ऐसी शर्तों पर, जो न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत हों, अनुज्ञात कर सकेगी ।

ट्रस्ट एक्ट (13 और 14 विक०सी० 60) का लागू होना ।

7. ट्रस्ट एक्ट, 1850 की धारा 30 उन मामलों पर विस्तारित होगी तथा लागू होगी जब, विभाजन के वादों में, न्यायालय सम्पत्ति के विभाजन की बजाय विक्रय का निदेश देती है ।

8. हर मेजेस्टी के राज्य के उन्नीसवें और बाइसवें वर्ष का एक्ट ऑफ सेशन (चेप्टर एक सौ बीस) की धारा 23 से 25 (दोनों को सम्मिलित करते हुए), व्यवस्थापित सम्पदा के पट्टों और विक्रयों को सुकर बनाने के लिए उस धन पर विस्तारित होंगे और लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्राधिकार के अधीन किए गए किसी विक्रय पर प्राप्त किया जाता हो । विक्रय के आगमों का उपयोजन (19 और 20 विक०सी० 60)।

9. कोई व्यक्ति जिसने यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो विभाजन के लिए वाद चलाया होता, उन पक्षकारों में से अन्य पक्षकार या पक्षकारों (यदि कोई हों) तामील किए बिना, एक या अधिक हितबद्ध पक्षकारों के विरुद्ध ऐसा वाद चला सकेगा, और वाद का कोई प्रतिवादी इस बात के लिए सक्षम नहीं होगा कि वह पक्षकारों के अभाव के कारण आपत्ति करे, और मामले की सुनवाई के समय न्यायालय सम्पत्ति की प्रकृति के बारे में, तथा उसमें हितबद्ध पक्षकारों, और अन्य विषयों के बारे में ऐसी जांच का निदेश दे सकेगा जैसी कि वह आगे और विचार करने पर विभाजन या विक्रय का आदेश करने की दृष्टि से आवश्यक या उचित समझे, किन्तु ऐसे समस्त व्यक्तियों पर, जो, यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता, वाद के लिए आवश्यक पक्षकार होते, सुनवाई पर डिक्री या आदेश की सूचना तामील की जाएगी, और ऐसी सूचना के पश्चात् कार्यवाहियों के द्वारा इस प्रकार आबद्ध होंगे मानो वे मूलतः वाद के पक्षकार रहे हों, और उन्हें वाद का पक्षकार समझा जाएगा, और ऐसे समस्त व्यक्तियों को कार्यवाहियों में हाजिर होने की स्वतंत्रता होगी, और कोई ऐसा व्यक्ति, साधारण आदेश द्वारा परिसीमित समय के भीतर, डिक्री या आदेश में परिवर्धन किए जाने के लिये न्यायालय को आवेदन कर सकेंगे । विभाजन वादों के पक्षकार ।

10. विभाजन के वाद में न्यायालय सुनवाई के समय तक के खर्चों के बारे में ऐसा आदेश कर सकेगा जो उचित समझे । विभाजन वादों में खर्चे ।

11. चान्सरी एमेण्डमेण्ट एक्ट, 1858 की धारा 9, 10 तथा 11, जो साधारण आदेशों के किए जाने से संबंधित हैं, इस प्रकार मानो उनकी इस अधिनियम में पुनरावृत्ति की गई है, और उन निबन्धनों के, जो उसके प्रयोजनों को लागू किए गए हैं, अनुसार प्रभावशील होंगी । इस अधिनियम के अधीन साधारण आदेशों के संबंध में (21 और 22 विक० क्ला० 27)।

12. इंग्लैंड में काऊण्टी न्यायालयों को किसी ऐसे मामले में जिसमें उस सम्पत्ति का जिससे वाद संबंधित है, मूल्य अधिक न हो, वैसी ही शक्ति और प्राधिकार होगा जो चान्सरी न्यायालय को विभाजन वादों में होता है (जिसके अन्तर्गत अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्ति और प्राधिकार आता है) और वह उनका प्रयोग करेगा; ऐसी शक्ति और प्राधिकार उसी रीति में और उन्हीं उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए प्राप्त होगा तथा प्रयोग में लाया जाएगा जिस रीति में और जिन उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, काउण्टी कोर्टस एक्ट, 1865 की धारा 1 के अधीन प्रदत्त शक्ति और प्राधिकार प्राप्त होता है और प्रयोग में लाया जाता है। विभाजन वादों में काउण्टी न्यायालय की अधिकारिता (28 विक० क्ला० 99)।

परिशिष्ट 2

पार्टीशन एक्ट, 1876

(39 और 40 विक०क्ला० 17) (निरसित)

चेप्टर 17

पार्टीशन एक्ट, 1868 को संशोधित करने हेतु अधिनियम 1876 ई०

[27 जून, 1876]

महासम्राज्ञी द्वारा एकत्रित वर्तमान संसद् में स्पिरिच्युअल और टेम्पोरल लार्ड्स और कामन्स की सलाह और सम्मति से तथा उनके प्राधिकार से निम्नलिखित रूप में अधिनियमित हो :—

संक्षिप्त नाम।

1. यह अधिनियम पार्टीशन एक्ट, 1876 कहलाएगा और पार्टीशन एक्ट, 1868 के साथ पढ़ा जाएगा।

अधिनियम का लागू होना।

2. यह अधिनियम उन अनुयोजनों को, जो इस अधिनियम के पारित होने के समय लंबित हों और साथ ही उन अनुयोजनों को, जो इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् प्रारंभ किए गए हों, लागू होगा, और पद "निर्णय" के अन्तर्गत डिक्री या आदेश आता है।

विशेष मामलों में डिक्री या आदेश की सूचना की तामील से अभिमुक्ति।

3. जहां विभाजन के किसी अनुयोजन में न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अभियोजन की सुनवाई पर निर्णय की सूचना की तामील उन समस्त व्यक्तियों पर नहीं की जा सकती जिन पर उस सूचना की तामील पार्टीशन एक्ट, 1868 द्वारा की जानी अपेक्षित है अथवा उस सम्पत्ति के, जिससे वह अभियोजन संबंधित है, मूल्य के अननुपातिक व्यय किए बिना, इस प्रकार तामील नहीं की जा सकती है, तो न्यायालय, यदि वह उचित समझे, सम्पत्ति में हितबद्ध पक्षकारों में से किसी पक्षकार के अनुरोध पर, और उनमें से किन्हीं अन्य की विसम्मति या निर्योग्यता के होते हुए भी, आदेश द्वारा, आदेश में विनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग पर उस तामील से अवमुक्ति दे सकेगा, और उसके बदले, ऐसी सम्पत्ति में हितबद्ध होने का दावा करने वाले उन व्यक्तियों से, जिन पर ऐसी तामील नहीं की गई है, हाजिर होने और उसके संबंध में अपने-अपने दावे चेम्बर में न्यायाधीश के समक्ष ऐसे समय के भीतर, जो उसके द्वारा परिसीमित किया जाएगा, स्थापित करने की अपेक्षा करते हुए विज्ञापन का प्रकाशन ऐसे समयों पर और ऐसी रीति में प्रकाशित किए जाने का निदेश दे सकेगा जो न्यायालय उचित समझे। इस प्रकार परिसीमित समय का अवसान हो जाने पर, वे समस्त व्यक्ति जो इस प्रकार हाजिर न हुए हों और जिन्होंने ऐसे दावे स्थापित न किए हों, चाहे वे न्यायालय की अधिकारिता के भीतर हों या बाहर, (जिनके अन्तर्गत किसी निर्योग्यताधीन व्यक्ति भी आते हैं) उस अनुयोजन में की गई कार्यवाहियों से आबद्ध होंगे मानो अवमुक्ति देने वाले आदेश की तारीख को उसकी तामील से अवमुक्ति दे दी गई थी और तदुपरि ट्रस्टी एक्ट, 1850 के अधीन न्यायालय की शक्तियां उस सम्पत्ति, जिससे अनुयोजन संबंधित है, में के उनके हितों पर इस प्रकार विस्तारित होंगी मानो वे अनुयोजन के पक्षकार रहे थे, और न्यायालय तदुपरि, यदि वह उचित समझे, सम्पत्ति के विक्रय का निदेश दे सकेगा और समस्त आवश्यक और उचित पारिणामिक निदेश दे सकेगा।

जहां तामील से अवमुक्ति दे दी जाती है, वहां प्रक्रिया।

4. जहां किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के किसी वर्ग पर सूचना की तामील से अवमुक्ति देते हुए इस अधिनियम के अधीन कोई आदेश किया जाता है, और न्यायालय के आदेश से सम्पत्ति का विक्रय कर दिया जाता है, वहां निम्नलिखित उपबन्ध प्रभावशील होंगे :—

(1) न्यायालय के आगामी आदेश का पालन करने के लिए, विक्रय के आगम न्यायालय में जमा किए जाएंगे;

(2) न्यायालय, आदेश द्वारा, वह समय नियत करेगा जिसका अवसान हो जाने पर, आगमों का वितरण किया जाएगा और समय-समय पर, अतिरिक्त आदेश द्वारा, उस समय को बढ़ा सकेगा;

(3) न्यायालय ऐसी सूचनाएं विज्ञापन द्वारा या अन्यथा, जैसा कि वह किन्हीं ऐसे व्यक्तियों को, जिन पर तामील की जाने से अवमुक्ति दे दी गयी हो और जो पूर्व में हाजिर न हुए हों और जिनने अपने दावे स्थापित न किए हों, विक्रय का तथ्य, आशयित वितरण का समय और वह समय, जिसके भीतर आगमों में भाग लेने के लिए दावा किया जाना चाहिए, अधिसूचित करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समझे, दिए जाने का निदेश दे सकेगा;

(4) यदि इस प्रकार नियत किए गए या बढ़ाए गए समय का अवसान हो जाने पर, हितबद्ध व्यक्तियों के हित अभिनिश्चित कर लिए गए हों, तो न्यायालय आगमों का वितरण उन व्यक्तियों के अधिकारों के अनुसार करेगा;

(5) यदि इस प्रकार नियत किए गए या बढ़ाए गए समय का अवसान हो जाने पर, हितबद्ध समस्त व्यक्तियों के हित अभिनिश्चित न किए गए हों, और न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि उनका अभिनिश्चियन नहीं किया जा सकता, या उस सम्पत्ति के या अनिश्चित हितों के मूल्य से अननुपातिक व्यय किए बिना अभिनिश्चित नहीं किया जा सकता, तो न्यायालय आगमों का वितरण ऐसी रीति में, जो न्यायालय को उन व्यक्तियों के अधिकारों के सर्वाधिक अनुरूप प्रतीत होती हो जिनके आगमों में भाग लेने के दावे स्थापित हो गए हैं, चाहे वे समस्त व्यक्ति न्यायालय के समक्ष हों, या न हों, और ऐसे आरक्षणों के साथ (यदि कोई हों), जैसे कि न्यायालय किन्हीं ऐसे अन्य व्यक्तियों के (चाहे अभिनिश्चित किए गए हों या नहीं) पक्ष में उचित समझे जो न्यायालय के समक्ष की साक्ष्य से ऐसा प्रथम दृष्ट्या अधिकार रखने वाले प्रतीत होते हैं जिनके लिए एसा उपबंध किया जाना चाहिए, भले ही ऐसे अधिकार पूर्णतः स्थापित न हुए हों, किन्तु अन्य समस्त व्यक्तियों को अपवर्जित करते हुए, करेगा, और तदुपरि ऐसे समस्त अन्य व्यक्ति उन आगमों का वितरण होने पर उसमें भाग लेने के लिए इस अधिनियम के आधार पर अपवर्जित हो जाएंगे, किन्तु वितरण हो जाने पर भी, कोई अपवर्जित व्यक्ति, भाग लेने वाले किसी व्यक्ति से अपवर्जित व्यक्ति के हिस्से का कोई ऐसा प्रभाग, जो उसके द्वारा प्राप्त किया गया हो, वसूल कर सकेगा।

5. जब विभाजन के किसी अनुयोजन में दो या अधिक विक्रय किए जाते हैं तब यदि कोई व्यक्ति, जिसे उन विक्रयों में से किसी विक्रय के आगमों में भाग लेने से इस अधिनियम के आधार पर अपवर्जित कर दिया गया हो, उत्तरवर्ती विक्रय के आगमों में भाग लेने का अपना दावा स्थापित कर देता है, तो उत्तरवर्ती विक्रय के आगमों में हितबद्ध अन्य व्यक्तियों के हिस्सों में उस सीमा तक (यदि कोई हो) कमी हो जाएगी जिस सीमा तक उनमें अपवर्जित व्यक्ति के पूर्व विक्रय के आगमों में भाग लेने के कारण वृद्धि हुई थी, और वे उस सीमा तक उस व्यक्ति को उस हिस्से के, जिसके लिए वह पूर्व विक्रय के आगमों में उस दशा में हकदार होता जब कि उसके लिए उसका दावा समय के सम्यक् अनुक्रम में स्थापित कर दिया गया होता, संदाय में या संदाय के प्रति उपयोजित किए जाएंगे।

एक ही अनुयोजन में उत्तरवर्ती विक्रयों के मामलें में उपबन्ध।

6. विभाजन के किसी अनुयोजन में विवाहित स्त्री, शिशु, विकृत चित्त वाले व्यक्ति या किसी अन्य निर्योग्यता से ग्रस्त किसी व्यक्ति की ओर से विक्रय के लिए अनुरोध या क्रय करने के लिए वचनबंध वादमित्र, संरक्षक, कमेटी इन लूनेसी (यदि पागलपन के बारे में आदेश द्वारा इस प्रकार प्राधिकृत की गई हो) या किसी शिशु की ओर से ऐसे अनुरोध या वचनबंध के अधीन किसी व्यक्ति की ओर से कार्य करने के लिए प्राधिकृत अन्य व्यक्ति द्वारा किया जा सकेगा, जब तक कि यह प्रतीत न होता हो कि विक्रय या क्रय उसके फायदे के लिए होगा।

विवाहित स्त्री, शिशु या निर्योग्यता से ग्रस्त व्यक्ति द्वारा अनुरोध।

7. पार्टीशन एक्ट, 1868 के प्रयोजनों के लिए, विभाजन के किसी अनुयोजन में विक्रय और आगमों के वितरण के लिए अनुयोजन सम्मिलित होगा और विभाजन के किसी अनुयोजन में विक्रय और आगमों के वितरण के लिए दावा करना पर्याप्त होगा, और विभाजन के लिए दावा करना आवश्यक नहीं होगा।

विभाजन के अनुयोजन में विक्रय और विक्रय के आगमों के वितरण के लिए अनुयोजन सम्मिलित होगा।

परिशिष्ट 3

वर्तमान अंग्रेजी विधि और उसका उद्भव

एक.—सामान्य

अंग्रेजी विधि में विभाजन ।

इंग्लैंड में, विभाजन तब होता था, जब संयुक्त अभिधारियों, सामान्यिक अभिधारियों, सहदायिकों या (केण्ट में) गेवेलकाइन्ड के वारिसों की भूमि उनके बीच विभाजित की जाती थी और प्रत्येक को सुभिन्न हिस्सा मिलता था ।[1]

कामन लॉ में सहदायिकों के बारे में स्थिति ।

कामन लॉ में सहदायिकों के बीच अनिवार्य विभाजन की रिट द्वारा किया जाता था ।

कामन लॉ में संयुक्त अभिधृतियों के बारे में स्थिति ।

संयुक्त अभिधारियों या सामान्यिक अभिधारियों की दशा में[2] विभाजन के लिए विवश करने का कोई अधिकार नहीं था ।[3] उन सहदायिकों को, जो अपनी भूमि पूर्व स्वामी से विरासत में पाते थे[4], को विभाजन कराने के लिए अनुज्ञात[5] किया जाता था क्योंकि उनका सहस्वामित्व विधि के कार्य द्वारा उन पर डाला जाता था न कि उनके स्वयं के करार द्वारा, अतः यह उचित समझा गया एक व्यक्ति की विपर्यस्तता दूसरों को सम्पत्ति का उपभोग करने की अधिक फायदाप्रद पद्धति प्राप्त करने से नहीं रोक सकती ।[6]

तथापि, यह तर्क संयुक्त अभिधृति या सामान्यिक अभिधृति को, जो आवश्यक रूप से पक्षकारों के कार्य से उद्भूत हुई थी, लागू नहीं किया गया ।[7]

1539 और 1540 के पार्टीशन एक्ट ।

तथापि, 1539 और 1540[8] के पार्टीशन एक्टों द्वारा, जैसे कि वे 1967 में संशोधित[9] किए गए थे, विभाजन कराने के लिए विवश करने का कानूनी अधिकार संयुक्त अभिधारियों और सामान्यिक अभिधारियों को प्रदत्त किया गया था,[10] एक अभिधारी विभाजन के लिए आग्रह[11] करने के लिए हकदार हो गया था चाहे वह कितना भी असुविधाजनक क्यों न हो ।[12]

विभाजन करने की पद्धति ।

इंग्लैंड में वास्तव में विभाजन कराने (जहां वह अनुज्ञेय था) की प्रक्रिया इस प्रकार थी । कमिश्नरों को सम्पत्ति विभाजित करने के लिए कमीशन जारी किया जाता था, उनकी विवरणी आ जाने पर; विभाजन करने के लिए पक्षकारों को पारस्परिक हस्तांतरण-पत्र निष्पादित करने का आदेश दिया जाता था ।[13]

---

1. जोविट, डिक्शनरी ऑफ इंगलिश लॉ (1959) खण्ड 2 ।
2. गैगरी और वेड, रियल प्रापर्टी (1966) पृ० 438, 439 ।
3. लिट 290,318 ।
4. मेगरी और वेड, रियल प्रापर्टी (1966) पृ० 441 ।
5. तदैव 241 ।
6. विलियम्स, 243, 244 ।
7. विलियम्स 149, बी 1, comn. दो 180 ।
8. पार्टीशन एक्ट, 1539, 31 हेन० 8 सी 1 (विरासत की सम्पदा) पार्टीशन एक्ट, 1540, 32 हेन० 8 सी 32 (जीवन-पर्यन्त या कुछ वर्षों के लिए सम्पदा) ।
9. पार्टीशन एक्ट, 1697 (7 और 9 विल० 3, सी० 31) (प्रक्रिया में सुधार करने वाला) ।
10. देखिए टिप्पण (2) 169 (ए) ।
11. पार्कर वि० जेरार्ड (1754) ए एम बी 236 ।
12. वार्नर वि० बायनेस 1790 ए एम बी 569 ।
13. जोविट, इंगलिश लॉ की डिक्शनरी (1959), खण्ड 1, पृ० 416 ।

कामन लॉ में रिट ।

उपनिधान करार[1], जो विभाजन के लिए एकमात्र तरीका था, रिट डी पार्टीशने फेसीयेन्डा द्वारा होता था[2] तथापि, विभाजन की रिट बोझिल और कठिन प्रक्रिया थी । सन् 1697[3] में, इस प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए प्रयास किए जाने के पश्चात्, 1833 में इस रिट का उत्सादन कर दिया गया ।[4]

उसके पश्चात्, विभाजन चान्सरी में विभाजन के लिए अनुयोजन द्वारा किया जाता था, चान्सरी डिवीजन के बारे में इस अधिकारिता की कानून द्वारा पुष्टि की गई ।[5]

दो—प्रतिकर

विक्रय की शक्ति का न होना ।

पार्टीशन एक्ट, 1868 के पूर्व, कामन लॉ न्यायालय प्रतिकर अधिनिर्णीत नहीं कर सकते थे, किन्तु केवल भूमियों तथा अन्य स्थावर सम्पत्तियों का पक्षकारों के बीच उनके अपने-अपने हिस्सों के अनुसार मात्र विभाजन या आबंटन सम्पत्तियों के मूल्य को ध्यान रखते हुए किए जाने का निदेश दे सकते थे ।[6] तथापि, साम्या न्यायालय, अधिक सुविधाजनक और न्यायोचित विभाजन की दृष्टि से पक्षकारों में से एक पक्षकार को समताकारी धन के लिए प्रतिकर का संदाय किए जाने का आदेश दे सकते थे ताकि किसी अन्याय या परिहार्य असमानता का निवारण हो सके ।

तीन—विक्रय

अंग्रेजी विधि में विक्रय ।

इसके बाद भी चान्सरी में भी एक कठिनाई बनी रही । यद्यपि चान्सरी न्यायालयों ने पार्टीशन की डिक्री देने की अधिकारिता ग्रहण कर ली थी, तथापि न्यायालय को विभाजन से इन्कार करने या उसके बदले विक्रय का आदेश देने का विवेकाधिकार नहीं था ।[7] इसके कारण अनेक कठिनाइयां और विसंगतियां उत्पन्न हुईं । 1868 के पार्टीशन एक्ट के पूर्व, न्यायालय को उन मामलों में भी जिनमें स्पेसी का विभाजन बहुत अधिक असुविधाजनक होता था, और वह सम्पत्ति के मूल्य को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करता था, विभाजन के बदले विक्रय का निदेश देने के लिए कामन लॉ में कोई शक्ति नहीं थी । अतः न्यायालय को कतिपय मामलों में, विभाजन के बदले सम्पत्ति के विक्रय और आगमों के वितरण का आदेश देने की अधिकारिता प्रदान करने के लिए, 1868 और 1876 में कानून पारित किए गए ।[8-9]

कामन लॉ में अनुभव की गई असुविधा का प्रतिनिधिक उदाहरण टर्नर विरुद्ध मोरगन के मामले में मिलता है ।[10] तीन व्यक्तियों के बीच मकान के विभाजन के लिए डिक्री पारित की गई थी । कमिश्नर ने वादी को चिमनियों का पूरा स्टाक समस्त अंगीठियां मकान की एकमात्र सीढ़ियां और प्रांगण की समस्त सुविधाएं आबंटित कर दीं । अपील में, लार्ड एल्डन, लार्ड चान्सलर ने आपत्तियों को अमान्य करते हुए, यह कहा कि "उन्हें नहीं मालूम था कि पक्षकारों के लिए बेहतर विभाजन कैसे किया जाय, यह कि उन्होंने बहुत अनिच्छापूर्वक कमीशन जारी किया था, किन्तु वे प्राधिकार से आबद्ध थे, और यह कि न्यायालय को हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित करने के लिए सबल कारण होना चाहिए क्योंकि पक्षकारों को क्रय करने और विक्रय करने के लिए रजामन्द होना चाहिए ।"

पार्टीशन एक्ट, 1868 का प्रभाव ।

विभाजन के बदले विक्रय के लिए न्यायालय को 1868 में[11] सशक्त किया गया । ऐसा आदेश कुछ दशाओं में अत्यधिक वांछनीय हो सकता है, उदाहरणार्थ, उस दशा में जब विभाजन कार्यवाहियों

1. हेल्सबरी, तृतीय संस्करण, खण्ड 32, पृ 344, पैरा 541 ।
2. विभाजन अनुयोजनों के विकास के लिए सामान्यतः पटेल वि प्रेमभाई (1954) ए सी 35, (1953) 3 डब्ल्यू० एल० आर० 836 (पी० सी०) देखिए ।
3. 8 और 9 विल० 3, सी० 31 (1996-7) (निरसित) ।
4. रियल प्रापर्टी लिमीटेशन एक्ट, 1833 (3 और 4 वि० 4, सी 27) (निरसित) ।
5. जुडीकेचर एक्ट, 1873 धारा 34 ।
6. गदाधर घोष विरुद्ध जानकीनाथ घोष, ए आई आर 1969 कलकत्ता 59 जिसमें स्टोरी के इक्विटी ज्युरिसडिक्शन के प्रति निर्देश किया गया है, तृतीय संस्करण, अनुच्छेद 654 ।
7. हेल्सबरी, तृतीय संस्करण, खण्ड 32, पृ० 35, पैरा 541, 542 ।
8. पार्टीशन एक्ट, 1868 (31 और 32 विक० सी० 40) ।
9. पार्टीशन एक्ट, 1876 (38 और 40 विक० सी० 17) (परिशिष्ट 2) ।
10. टर्नर विरुद्ध मोरगन (1803) 8 वेस० 143, 11 वेस० 157 ।
11. पार्टीशन एक्ट, 1879 द्वारा संशोधित पार्टीशन एक्ट, 1868 देखिए रेम्बर्डन विरुद्ध बार्नेस (1871) 6 चां० अपील 685, पावेल विरुद्ध पावेल (1874) 10 चां० अपील 130, ड्रिंकवाटर विरुद्ध रैटक्लिफ (1875) एल० पी० 20 इक्वि० 528 ।

के खर्चे सम्पत्ति के मूल्य से अधिक हों,[1] या जहां एक मकान तीन हिस्सों में विभाजित हो जाय, और दो-तिहाई हिस्से के स्वामी को समस्त चिमनियां और अंगीठियां और एकमात्र सीढ़ियां दी जायं, [2]किन्तु यदि मकान तीन हों, तो प्रत्येक हिस्सा एक मकान का होगा, न कि प्रत्येक मकान का एक-तिहाई।[3]

विक्रय का निदेश देने की शक्ति।

1868 के एक्ट में न्यायालय के विवेकानुसार विक्रय के लिए उपबन्ध किया गया, और आधे हिस्से के सह-स्वामियों द्वारा अनुरोध किया जाने पर, आज्ञापक विक्रय भी उपबंध किया गया। 1876 में किए गए विक्रय द्वारा, यह उपबंध किया गया था कि विभाजन के अनुयोजन में विक्रय और आगमों के वितरण के लिए अनुयोजन सम्मिलित होगा।

वर्तमान विधि।

ये पार्टीशन एक्ट अब निरस्त कर दिए गए हैं।[4] उनके स्थान पर, कतिपय शर्तों के अध्यधीन रहते हुए, हिताधिकारियों की सम्मति से विभाजन करने और उन्हें भूमि हस्तांतरित करने की शक्ति न्यासियों (जिनमें वैध सम्पदा निहित हो) को दी गई है।[5] यदि न्यासी या हिताधिकारियों में से कोई हिताधिकारी विभाजन से सहमत होने से इन्कार करता है, तो कोई भी हितबद्ध व्यक्ति[6] न्यायालय को आवेदन कर सकेगा, जो ऐसा आदेश कर सकेगी जो वह उचित समझे,[7] जैसा कि विक्रय के लिए आदेश।

चार—इंग्लैंड 1868 और 1876 के पार्टीशन एक्ट

पूर्ववर्ती एक्ट की धाराओं का विश्लेषण।

यह उल्लेख किया जा सकता है कि 1868 के (अंग्रेजी) पार्टिशन एक्ट में, विक्रय की शक्ति का प्रयोग तीन विभिन्न स्थितियों को लागू होने वाली तीन धाराओं के अधीन किया जा सकता था यद्यपि यह अधिनियम निरस्त किया जा चुका है, फिर भी इन धाराओं का विश्लेषण कई दृष्टियों से उपयोगी हो सकता है।

1868 के अंग्रेजी एक्ट की धारा 3 के अधीन, यदि न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि सम्पत्ति की प्रकृति या हितबद्ध या सम्भाव्यत: हितबद्ध पक्षकारों, या कुछ पक्षकारों की अनुपस्थिति या निर्योग्यता के या किसी अन्य परिस्थिति के कारण, सम्पत्ति के विभाजन की अपेक्षा उसका विक्रय हितबद्ध पक्षकारों के लिए अधिक फायदाप्रद होगा, तो न्यायालय, यदि वह उचित समझे, हितबद्ध पक्षकारों में से किसी भी पक्षकारों के अनुरोध पर, और अन्य पक्षकारों में से किसी भी पक्षकार की अनुपस्थिति या निर्योग्यता पर ध्यान दिए बिना, सम्पत्ति के विक्रय का निदेश दे सकेगा और समस्त आवश्यक या उचित पारिणामिक निदेश दे सकेगा।

1868 के एक्ट की धारा 4 के अधीन यदि, उस सम्पत्ति के, जिससे वाद संबंधित है, एक आधे हिस्से या उससे अधिक की सीमा तक हितबद्ध पक्षकारगण, न्यायालय से विभाजन के बदले उसके विक्रय के निदेश के लिए अनुरोध करते हैं, तो न्यायालय, जब तक वह कोई तत्प्रतिकूल कारण नहीं देखता, सम्पत्ति के विक्रय का निदेश दे सकेगा।

धारा 5 के अधीन विक्रय का निदेश देने की शक्ति।

1868 के अंग्रेजी एक्ट की धारा 5 के अधीन, यदि सम्पत्ति में हितबद्ध किसी पक्षकार ने न्यायालय से सम्पत्ति के विक्रय का निदेश देने की प्रार्थना की हो, तो न्यायालय, यदि वह उचित समझे, इस दशा में के सिवाय जब कि सम्पत्ति में हितबद्ध अन्य पक्षकार या उनमें से कुछ विक्रय के लिए अनुरोध करने वाले पक्षकार के हिस्से का क्रय करने का वचनबंध करता है, सम्पत्ति के विक्रय का निदेश दे सकेगा और समस्त आवश्यक और उचित पारिणामिक निदेश दे सकेगा, और ऐसा वचनबंध किया जाने पर, न्यायालय विक्रय के लिए अनुरोध करने वाले पक्षकार के हिस्से का मूल्यांकन ऐसी रीति में किया जाने का आदेश दे सकेगा जो वह उचित समझे, और समस्त आवश्यक या उचित पारिणामिक दे सकेगा।

1. देखिए ग्रिफीज विरुद्ध ग्रिफीज (1863) 11, डब्ल्यू०बी० 943।
2. देखिए टर्नर विरुद्ध मारगन (1803) 8 वेस० 143, 11 वेस० 157 एन०।
3. अर्ल ऑफ क्लेरन्डन विरुद्ध हार्नबी (1718) 1 पी० ए०एम०एस० 446।
4. एल० पी० (ए०एम०) ए०, 1924, धारा 10, 11(3), 10वीं अनु०, एल०पी०ए० 1925, 7वीं अनु०।
5. एल० पी०ए० 1925, धारा 28(3)।
6. पर्सन इन्टरेस्टेड—के अर्थ के लिए, देखिए स्टीवेन्स विरुद्ध हंचिसन (1653) चा० 299।
7. एल०पी०ए० 1925, धारा 30।

साधारणत:[1], यह अवधारित करने में कि क्या[2] विभाजन की अपेक्षा विक्रय अधिक फायदाप्रद था, न्यायालय ने भावनाओं का ध्यान न रखते हुए, धन-संबंधी परिणामों पर विचार किया, और हितबद्ध समस्त पक्षकारों के हित पर सम्पूर्णतः ध्यान दिया। किन्तु न्यायालय उस दशा में विक्रय का आदेश दे सकते थे और देते थे जबकि उसके विवेकानुसार वह उसे उचित प्रतीत होता था, सिवाय उस स्थिति में के जबकि विक्रय का विरोध करने वाले पक्षकार उन पक्षकारों के हिस्सों का क्रय करने का वचनबंध करते थे जो विक्रय चाहते थे। यह भी कहा जा सकता है कि विक्रय का अनुरोध करने वाले पक्षकार को आंके गए मूल्य पर सम्पत्ति से विलग होने के लिए विवश नहीं किया जा सकता था।[3]

इंग्लैंड में विक्रय के बारे में स्थिति।

ये सभी धाराएं केवल उन दशाओं में लागू होती थीं जब विभाजन के बाद में विभाजन की डिक्री 'इस एक्ट के पारित न होने की दशा में' दी जा सकती थी।

निम्नलिखित विश्लेषण से इन तीन धाराओं का अन्तर स्पष्ट हो जाएगा :—

धारा 3 (1868 एक्ट)	धारा 4 (1868 एक्ट)	धारा 5 (1868 एक्ट)
(एक) विक्रय का आदेश सम्पत्ति आदि की प्रकृति आदि के कारण दिया जाता है।	विक्रय का आदेश आधे हिस्से में हितबद्ध पक्षकारों के अनुरोध पर दिया जाता है।	सम्पत्ति आदि की प्रकृति पर विचार किए बिना या आधे हिस्से में हितबद्ध व्यक्तियों की इच्छा का ध्यान रखे बिना, पक्षकार के अनुरोध पर विक्रय का आदेश दिया जाता है।
(दो) विक्रय विवेकाधीन है।	विक्रय आबद्धकर है जब तक कि तत्प्रतिकूल कोई समुचित कारण न हों।	विक्रय विवेकाधीन है।
(तीन) हितबद्ध पक्षकार का अनुरोध पर्याप्त है।	आधे हिस्से में हितबद्ध पक्षकारों का अनुरोध आवश्यक है।	किसी हितबद्ध पक्षकार का अनुरोध पर्याप्त है।
(चार) विक्रय के लिए अनुरोध करने वाले पक्षकार का हिस्सा क्रय करने और इस प्रकार विक्रय को टालने का अन्य सह-हिस्सा धारकों को कोई अधिकार नहीं है।	अन्य सह-हिस्साधारकों को क्रय करने और इस प्रकार विक्रय को टालने का कोई अधिकार नहीं है।	अन्य सह-हिस्साधारक विक्रय का अनरोध करने वाले पक्षकार का हिस्सा क्रय कर सकते हैं।

पांच—1925 का विधान

1868 और 1876 के पार्टीशन एक्ट अब प्रापर्टी एक्ट द्वारा निरस्त कर दिए गए हैं।[4-5]

पार्टीशन एक्टों के निरसन के लिए कारण।

इंगलैंड में पार्टीशन एक्टों के निरसन के कारणों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार दिया जा सकता है। सामान्यिक अभिधृति में, भूमि में हितबद्ध व्यक्तियों की संख्या और उनमें से प्रत्येक का पृथक् हिस्से का हकदार होने से अन्तरण में गम्भीर कठिनाई उत्पन्न होती थी। ऐसा कोई भी एक व्यक्ति नहीं होता था जिसमें विधिक सम्पदा उचित रूप से निहित की जा सके क्योंकि सभी अभिधारियों को वर्तमान उपभोग और कब्जे का समान अधिकार होता था। प्रत्येक पक्षकार की सम्मति मात्र प्राप्त करना आवश्यक नहीं था वरन् अन्तरण के लिए, उनमें से प्रत्येक के हक का उपकलन भी करना पड़ता था। इससे भ्रांति उत्पन्न होती थी।

1925 के एक्ट का प्रभाव।

इस भ्रांति को दूर करने के लिए, लॉ ऑफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 ने सामान्यिक अभिधृति से संबंधित विधि को आमूलतः परिवर्तित कर दिया।[6] इस विधान का उद्देश्य सामान्यिक अभिधृति के अधीन

1. हेल्सबरी, तृतीय संस्करण, खण्ड 32, पृ० 346, पैरा 543।
2. धारा 5, पार्टीशन एक्ट, 1868 (31 और 32 विक०सी०40)।
3. पिट विरुद्ध जोन्स, (1880), अपिल मामला 651।
4. ला आफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 (15 और 16-5 क्लाज 20) देखिए।
5. संक्षेप के लिए, हेल्सबरी, तृतीय संस्करण, खण्ड 32, पृ० 345 और 346, पैरा 543 और पृ० 346 पर फुटनोट (एच) देखिए।
6. कन्वर्शन के बारे में देखिए स्नेल, इक्विटी (1966), पृ० 517-519।

भूमि को इस प्रकार विक्रय किए जाने योग्य बनाना था कि उससे क्रेता पर अभिधारियों के हकों या फायदाप्रद, अधिकारों पर विचार करने की बाध्यता न लादी जाए। अतः 1925 के एक्ट की धारा 1(6) में प्रथम अध्युपाय के रूप में[1] यह उपबन्ध किया गया कि कोई विधिक सम्पदा 'भूमि के अविभाजित हिस्से' में विद्यमान रहने या सृजित किए जाने के योग्य नहीं है।

इसके बाद यह अधिनियमित किया गया है कि भूमि में अविभाजित हिस्सा विक्रय के लिए न्यास के पृष्ठ में ही सृजित किया जाएगा अन्यथा नहीं। इसमें दो परिणाम अन्तर्वलित हैं—[2]

प्रथमतः, विधिक सम्पदा विक्रय के लिए न्यास पर संयुक्त अभिधारियों के रूप में धारण करने वाले न्यासियों द्वारा धारित होनी चाहिए।

द्वितीयतः, सामान्यिक अभिधृति की विषय-वस्तु भूमि से धन में संपरिवर्तित की जाती है[4] क्योंकि बेचे जाने के लिए निदेशित भूमि को साम्या द्वारा इस रूप में माना जाता है मानो वह बेची जा चुकी हो।

तृतीयः अध्युपाय के रूप में, लॉ ऑफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 की धारा 34—38 के वे उपबन्ध हैं जिनके अधीन विधिक सम्पदा 'विक्रय के लिए कानूनी न्यास' पर धारित होनी चाहिए।

विक्रय के लिए इस कानूनी न्यास के परिणामस्वरूप, क्रेता प्रत्येक व्यक्ति के हक की जांच पड़ताल करने के पुराने कर्तव्य से निर्मुक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त, न्यासी की लिखित रसीद क्रेता के लिए पर्याप्त उन्मोचन है, और वह धन के उपयोजन को देखने के लिए आबद्ध नहीं है।[5-6]

क्रेता को लाभ।

इस स्कीम से क्रेता को यह लाभ है कि वह प्रत्येक सामान्यिक अभिधारी के हक का अन्वेषण करने के लिए बाध्य नहीं है। वह केवल विक्रय के लिए न्यास पर संयुक्त अभिधारीयों द्वारा धारित विधिक सम्पदा से संबंधित है क्योंकि फायदाप्रद रूप से हकदार व्यक्तियों के अधिकार विक्रय के लिए न्यास के पीछे केवल सम्यापूर्ण हितों के रूप में विद्यमान होते हैं, और विक्रय के लिए न्यासियों द्वारा भूमि का हस्तान्तरण कर दिया जाने पर उनकी पूर्णतः पूर्ति हो जाती है, बशर्ते क्रय धन का संदाय कम से कम दो न्यासियों को या न्यास निगम को कर दिया जाता है। अतः यह तत्वहीन है कि कुछ सामन्यिक अभिधारी अवयस्क हैं, या यह कि उनमें से कुछ विक्रय के लिए उपमत होने के लिए अनिच्छुक हैं।

यद्यपि, (अभिव्यक्त न्यास से भिन्न) विक्रय के लिए कानूनी न्यास की दशा में, न्यास, यथासाध्य, कब्जे के लिए हकदार हिताधिकारियों या विवाद की दशा में मूल्य की दृष्टि से उनमें से अधिकांश से परामर्श करने और उनकी इच्छाओं को प्रभावशील करने के लिए अपेक्षित हैं, तथापि यह अभिव्यक्त रूप से अधिनियमित है कि क्रेता को यह सरोकार नहीं होगा कि वह यह देखे कि इस अपेक्षा का अनुवर्तन किया गया है या नहीं।[7]

अंग्रेजी एक्ट क्यों निरस्त किए गए।

इन विस्तृत उपबन्धों को दृष्टिगत रखते हुए, इंग्लैंड में पार्टीशन एक्टों को बनाए रखना अनावश्यक हो गया। सह-स्वामियों द्वारा धारित समस्त भूमियों की दशा में, विक्रय (कतिपय अपवादों के अध्यधीन रहते हुए जो इस प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं हैं) एक नियम है और विभाजन, जब तक कि वह सम्मति से न हो, एक अपवाद।

छह:—विक्रय के लिए कानूनी न्यास

इंग्लैंड में विक्रय के लिए कानूनी न्यास निम्नानुसार प्रवर्तित होता है—

विक्रय के लिए कानूनी न्यास का प्रवर्तन

लॉ आफ प्रापर्टी एक्ट के अधीन, जब कोई कानूनी न्यास हो तो भूमि, उस भूमि का विक्रय करने के लिए न्यास पर इस शक्ति के साथ धारित की जाती है कि विक्रय को मुल्तवी किया जा सकेगा और विक्रय होने तक रेन्ट और लाभों को तथा विक्रय के अंतिम आगमों को न्यास पर धारित

1. चेशायर, माडर्न ला आफ रियल प्रापर्टी (1976) पृ० 222 से तुलना कीजिए।
2. धारा 36 (4), एल०पी०ए० 1925।
3. चेशायर, माडर्न ला ऑफ रियल प्रापर्टी (1976), पृ० 225।
4. कन्वर्शन के बारे में, देखिए स्नेल, इक्विटी (1966), पृ० 517, 519।
5. देखिए 14(1) ट्रस्टी एक्ट, 1925 (15 और 16 5 सी 18)।
6. स्नेल, इक्विटी (1966), पृ० 273।
7. एल०पी०ए० 1925, से 26(3) जैसा कि वह एल०पी० (ए०) ए०, 1926, अनु० द्वारा संशोधित की गयी है।

किया जा सकेगा कि जिससे उन व्यक्तियों के, जिनके लिए भूमि परिसीमित की गई थी, फायदाप्रद और साम्यापूर्ण अधिकारों को प्रभावशील किया जा सके ।[1]

जब तक समस्त न्यासी अपनी सम्पत्ति का अपना उपभोग बनाए रखना चाहते हैं, विक्रय को मुल्तवी करने की शक्ति को दृष्टिगत रखते हुए, उन्हें भूमि का विक्रय करने की आवश्यकता नहीं है ।[2] किन्तु यदि वे सभी विक्रय को मुल्तवी करने के लिए सहमत नहीं हो सकते तो विक्रय करने के लिए अनिवार्य निदेश को प्रभावशील किया जाना चाहिए । यदि अविभाजित हिस्सों से संबंधित सभी व्यक्ति पूर्ण आयु के हों तो वे सब इस कानूनी न्यास पर संयुक्त अभिधारी बन जाते हैं । इस प्रकार, यदि भूमि क, ख, ग और घ को बराबर-बराबर हिस्सों मे हस्तांतरित की जाती है तो सभी चार विधिक सम्पदा के संयुक्त अभिधारी बन जाते हैं, और जब विक्रय किया जाता है तब वे विक्रय के आगमों के और विक्रय होने तक रेन्ट और लाभ के[3] साम्यापूर्वक हकदार हैं । उन्हें विक्रय को मुल्तवी करने की अपनी शक्ति को दृष्टिगत रखते हुये तत्काल या वस्तुतः कभी भी विक्रय करने की आवश्यकता नहीं है । विक्रय के बदले, भूमि का विभाजन भी अनुज्ञात किया जाता है ।[4] न्यासी या फायदाप्रद रूप से हितबद्ध व्यक्तियों के प्रतिनिधियों को भी यह अधिकार है ।[5-6]

गत्यावरोध की कोई संभावना नहीं है।

अंग्रेजी एक्ट की स्कीम में कोई गत्यावरोध नहीं है । या तो अन्य सामान्यिक अभिधारी हिस्से का क्रय करने के लिए सहमत हो जाते हैं—जिस दशा में विक्रय के लिए न्यास उन हिताधिकारियों को हस्तान्तरण द्वारा समाप्त हो जाता है—या (यदि न्यासी अपनी शक्ति का प्रयोग करने से इन्कार कर देते हैं) हिताधिकारी न्यायालय को वेष्टन आदेश या अन्य आदेश के लिए आवेदन कर सकते हैं ।[7-8] यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि कोई 'हितबद्ध व्यक्ति' विक्रय करने के लिए न्यासी को बाध्य किए जाने के आदेश के लिए आवेदन कर सकता है ।[9]

इंग्लैंड में अन्य कानूनी उपबन्ध ।

यह उल्लेख करना शेष रह जाता है कि एन्क्लोजर एक्ट, 1845[10] की धारा 90 द्वारा, विभाजन आदेश करने की शक्ति एन्क्लोजर कमिश्नर को प्रदत्त की गयी थी । यह शक्ति अन्ततः कृषि और मत्स्य मंत्री को न्यागत हो गयी, किन्तु इस शक्ति का क्वचित ही प्रयोग किया गया और यह विश्वास किया जाता है कि वह लॉ ऑफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 द्वारा विवक्षित रूप से निरस्त कर दी गयी ।[11]

अविभाजित हिस्से में किसी विधिक सम्पदा का न होना ।

लॉ ऑफ प्रापर्टी एक्ट का पुनः विवेचन करने पर[12] इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि भूमि के किसी अविभाजित हिस्से में अब कोई विधिक सम्पदा विद्यमान नहीं रह सकती या सृजित नहीं की जा सकती और अधिकांश मामलों में वह केवल इस रूप में प्रवर्तित हो सकती है कि जिससे वह विक्रय के लिए किसी न्यास के पीछे प्रभावशील हो ।[13-14]

इस प्रकार, संयुक्त अभिवृति या सामान्यिक अभिधृति, जैसी कि कामन लॉ में जानी जाती है, अब इंग्लैण्ड में केवल न्यासियों की हैसियत ही में धारण की जा सकती है अन्यथा नहीं । 1925 के एक्ट के पारित होने के परिणाम स्वरूप, इंग्लैंड में विभाजन अनुयोजन अनावश्यक और अप्रचलित हो गए हैं ।[15]

---

1. धारा 35, ला आफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 ।
2. कूडे और पाटर, माडर्न लॉ आफ रियल प्रापर्टी (1929), पृ० 395 ।
3. धारा 34(2), ला आफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 ।
4. धारा 28(3) ला आफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 ।
5. रि ब्रूकर पब्लिक ट्रस्टी दि यंग, (1934) चे० 610 ।
6. जंगम वस्तु (चेटेल) के बारे में, धारा 188, ला आफ प्रापर्टी एक्ट 1925 देखिए ।
7. गुडेवे और पाटर, माडर्न ला आफ रियल प्रापर्टी (1929), पृ० 402, 403 ।
8. देखिए स्नेल, इक्विटी (1966), पृ० 247 ।
9. धारा 3, ला आफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 ।
10. एन्क्लोजर एक्ट, 1845 (8 और 9 विक०सी०118) ।
11. हेल्सबरी, तृतीय संस्करण, खण्ड 32, पृ० 346, पैरा 544 ।
12. धारा 106, ला आफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 (15 और 16 Geo 5 सी 20) ।
13. हेल्सबरी, तृतीय संस्करण, खण्ड 32, पृ० 329 पैरा 514, पृ० 338 पैरा 529 और सेटिल्ड लैण्ड एक्ट, 1925 की धारा 36(4) ।
14. धारा 30,34,35 और 36 ला आफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 ।
15. हेल्सबरी, तृतीय संस्करण, खण्ड 32, पृ० 344, पैरा 540 ।

एल० पी० एक्ट 1925 की धारा 34(2) का प्रभाव ।

1925 के एक्ट के और ब्यौरों का विश्लेषण करना अनावश्यक है । केवल इतना और कहना पर्याप्त होगा कि लॉ आफ प्रापर्टी एक्ट, 1925 की धारा 34(2), वस्तुतः, यह उपबंधित करती है कि अविभाजित हिस्से में की किसी भूमि का किसी व्यक्ति को हस्तांतरण (जहां व्यक्ति पूर्ण आयु के हों) इस रूप में प्रवर्तित होता है मानो भूमि प्राप्तिकर्ता में संयुक्त अभिधारियों की हैसियत से, इसमें इसके पश्चात् वर्णित कानूनी न्यास पर निहित हुई थी । उस एक्ट की धारा 35 के अधीन, ऐसा न्यास उसका विक्रय करने और खर्चों आदि का संदाय करने के पश्चात् विक्रय के शुद्ध आगमों को ऐसे न्यासों पर और ऐसी शक्तियों तथा उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, जो भूमि में हितबद्ध व्यक्तियों के अधिकारों को प्रभावशील करने के लिए अपेक्षित हों, रखे जाने के न्यास पर होता है ।

धारा 23 से 26 तथा 28 में विक्रय के लिए न्यास को प्रयुक्त किए जाने और सम्पत्ति को बेचे जाने तक उसका प्रयोग किए जाने के बारे में विस्तृत उपबंध किए गए हैं ।[1] 1925 के एक्ट की धारा 28(3) के अधीन उन भूमियों को, जो बेची न गयी हों, विभाजित किया जा सकता है, या समकारी धन के लिए उपबंध किया जा सकता है । धारा 188 के अधीन जंगम वस्तुओं को विभाजित किया जा सकता है ।

यदि सामान्यिक अभिधारियों में से एक सम्मति देने से अयुक्तियुक्त रूप से इंकार करता है, तो न्यायालय से विक्रय आदेश अभिप्राप्त किया जा सकता है, किन्तु न्यायालय ऐसा आदेश केवल तभी करेगी जब उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना न्यायसंगत और उचित है, और वह आनुकल्पिक स्थान के बारे में निबन्धन अधिरोपित कर सकती है ।[2-3]

सेटिल्ड लैण्ड एक्ट, 1925 ।

जहां भूमि व्यवस्थापित भूमि है, वहां वह मामला, सेटिल्ड लैण्ड एक्ट, 1925 के विस्तृत उपबंधों द्वारा शासित होता है । इस रिपोर्ट के प्रयोजनों के लिए उनका विशद विवेचन करना आवश्यक नहीं है ।[4] व्यावहारिक रूप में, न्यासियों को (जो हिताधिकारी हो या न हों) साधारण विधिक फीस (लीगल फी सिम्पल) अभिव्यक्त न्यास के रूप में हस्तांतरित की जाती है, जिसके ब्यौरे व्यवस्थापन की लिखत के, जिसके द्वारा समस्त आवश्यक या उचित पारिणामिक निदेश दिए जाते हैं, के सामने के भाग पर पूर्ण रूपेण उपवर्णित किए जाते हैं ।

इंग्लैंड में 1964 का विधान ।

इंग्लैंड में इस बारे में कतिपय शंकाओं को दूर करने के लिए एक विधान अधिनियमित किया गया[5] कि उत्तरजीवी संयुक्त अभिधारी अपने हिस्से का विक्रय किस सीमा तक कर सकता था ।[6] इस विधान का विस्तृत विवेचन वर्तमान प्रयोजन के लिए आवश्यक नहीं है ।

1. देखिए एम० लेविस 'स्टेट्यूटरी ट्रस्ट फार सेल' (1940) 56 एल०ओ०आर० 255 ।
2. बुल विरुद्ध बुल (1955) 1 एं०आर० 253,256(सी०ए०) ।
3. कुक विरुद्ध कुक (1962) प्रोबेट 235, (1962) 2 ए०आर०बी० 811 भी देखिए ।
4. विषय-बिन्दुओं की सार संक्षेप के लिए ला आफ इंग्लैंड पर स्टीफेन की टीका (1950) का खण्ड 1, पृ० 220 देखिए।
5. ला आफ प्रापर्टी (ज्वाइण्ट टेनेण्ट) एक्ट, 1964 ।
6. ला टाइम्स (20 मार्च, 1964) पृष्ठ 159 देखिए ।

भा०स०मु०ना०—वि4—371 एल०एण्डी०(एन०डी०)81—28-7-82—600

PLD. LXXXVI. (H)
600-1981 (DSK. IV).

Price : (Inland) *Rs.* 30·50 (Foreign) *£* 3·56 *or* $ 10 98 *Cents.*

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक 422 006 द्वारा मुद्रित तथा
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स दिल्ली 110 054 द्वारा प्रकाशित
1982